# चिन्तन-सृजन

## त्रैमासिक

वर्ष 8 अंक 4 अप्रैल-जून 2011

*सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति*

**लोकेश चन्द्र**

**यशदेव शल्य**

**जे.एन.राय**

**रमेशचन्द्र शाह**

*सम्पादक*

**बी. बी. कुमार**

*सह-सम्पादक*

**शंकर शरण**

**आस्था भारती**

**दिल्ली**

**वार्षिक मूल्य :**

| | |
|---|---|
| व्यक्तियों के लिए | 60.00 रुपये |
| संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए | 150.00 रुपये |
| विदेशों में | $ 15 |

*एक प्रति का मूल्य*

| | |
|---|---|
| व्यक्तियों के लिए | 20. 00 रुपये |
| संस्थाओं के लिए | 40.00 रुपये |
| विदेशों में | $ 4 |

*विज्ञापन दरें :*

| | |
|---|---|
| बाहरी कवर | 10,000.00 रुपये |
| अन्दर कवर | 7,500.00 रुपये |
| अन्दर पूरा पृष्ठ | 5,000.00 रुपये |
| अन्दर का आधा पृष्ठ | 3000.00 रुपये |

प्रकाशन के लिए भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद द्वारा आंशिक आर्थिक सहायता प्राप्त

आस्था भारती

**रजिस्टर्ड कार्यालय :**

27/201 ईस्ट एंड अपार्टमेण्ट
मयूर विहार फेस-1 विस्तार
दिल्ली-110 096

**कार्य-संचालन कार्यालय :**

23/203 ईस्ट एंड अपार्टमेण्ट
मयूर विहार फेस-1 विस्तार
दिल्ली-110 096
से आस्था भारती के लिए डॉ. बी.बी. कुमार, सचिव द्वारा प्रकाशित तथा
विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित।
फोन : 011-22712454
ई.मेल : asthabharati@yahoo.com
वेब साइट : asthabharati.org

चिन्तन-सृजन में प्रकाशित सामग्री में दृष्टि, विचार और अभिमत लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

# विषय-क्रम

*सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य* 5

1. आंतरिक सुरक्षा की चुनौती 7
*प्रकाश सिंह*

2. मर्यादा राम की 10
*श्रीराम परिहार*

3. सेतु समद्रुम-नल सेतु सुदुष्करः 20
*राजीव रंजन उपाध्याय*

4. आर्य-द्रविड़ परिवार की भाषाओं के काल्पनिक सिद्धान्त पर पुनर्विचार 34
*डॉ. परमानन्द पांचाल*

5. ईस्ट इण्डिया कम्पनी शासन काल में देवनागरी लिपि :
स्थिति और विश्लेषण 38
*रामनिरंजन परिमलेन्दु*

4. कवि 'अंचल' जी की याद 57
*महेन्द्र भटनागर*

5. भ्रष्टाचार निवारण आयोग क्यों? 73
*ब्रजेन्द्र प्रताप गौतम*

6. परा और अपरा विद्या 76
*लक्ष्मी नारायण मित्तल*

7. भूमंडलीकरण के दौर से गुजरती समकालीन हिन्दी कविता 80
*मृत्युंजय उपाध्याय*

8. बदलते दौर में साहित्य के सरोकार 90
*कृष्ण कुमार यादव*

9. अनुवाद : एक परिचर्चापूर्वोत्तर क्षेत्र की भाषाओं के सन्दर्भ में 96
*दिनेश कुमार चौबे*

10. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में 'हिन्दी' का अन्तर्जालीय परिदृश्य 101
*भाऊसाहेब नवनाथ नवले*

11. हिन्दी में लोकप्रियता का प्रतीक चातक 113
*पराक्रम सिंह*

12. पुस्तक समीक्षा :
अपने साथ 117
*डॉ. नीरजा रश्मि*

13. पुस्तक समीक्षा :
हरसिंगार खिलता है : एक विशिष्ट काव्य-कृति 120
*वरुण कुमार तिवारी*

14. पुस्तक समीक्षा :
त्रासद घटनाओं के विरुद्ध संगठित होकर संघर्ष का
बिगुल फूँकती कविताएँ 124
*घनश्याम मैथिल*

*पाठकीय प्रतिक्रिया* 126



# सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य

## शिक्षा में बदलाव आवश्यक

प्रोफेसर गोविन्द चन्द्र पाण्डेय नहीं रहे। 21 मई की दस बजे रात को राजीव गांधी कैन्सर अस्पताल, नयी दिल्ली में उनका देहान्त हो गया। वे इतिहास, दर्शन एवं बौद्ध दर्शन-साहित्य के हमारे शीर्षतम विद्वान थे। उनका प्रगाढ़ अध्ययन, गहन चिन्तन, सादा ऋषि-तुल्य जीवन तथा उनकी याद हमें सदासद्प्रेरणा देती रहेगी; पढ़ने और समझने की; अध्ययन, मनन, निदिध्यासन की। उनके देहावसान का समाचारमुझे चार दिन बाद मिला,देवेन्द्र स्वरूप जी से। वे एक दर्जन समाचार-पत्र पढ़ते हैं, यह समाचार केवल जनसत्ता में छपा था। ओम थानवी पाण्डेय जी को जानते थे; उन्होंने उन्हें पढ़ा भी था। और जब किसी ने उन्हें यह दुखद समाचार दिया, तो जनसत्ता ने अपने पाठकों को इसकी जानकारी दी। मन क्षुब्ध हुआ कि अन्य समाचार पत्रों में यह समाचार क्यों नहीं आया? क्या यह समाचार विपाशा बसु के हवाई अड्डे पर रोकेजाने, उनसे अर्थ-दण्ड वसूले जाने; हेडली पर रोज घण्टों चर्चा करने से कम महत्त्वपूर्ण था? किन्तु क्षोभ किस किस पर करें? क्या यह गिरावट, ऐसी विकृति केवल 'मेडिया' में ही आयी है? और यदि आयी है, तो क्यों आयी है? स्पष्टतः गिरावट चौतरफा है; केवल समाचार माध्यमों में ही नहीं।

ऐसा नही कि समाचार माध्यम समाज में व्याप्त हिंसा, भ्रष्टाचार, व्यवहारगत स्खलन, आदि का समाचार न दें; अवश्य दें। लेकिन ऐसा करते समय वे अपनी सीमाएँ न लाँघें। अपराध आदि अनैतिक तथाअसामाजिक कृत्यों की अतिरंजित प्रस्तुतियों द्वारा सामाजिक विकृति पैदा कर अपना बाजार बढ़ाने की मनोवृत्ति से तो समाचार माध्यमों को वचना ही चाहिए। फिर समाज में अच्छे लोग, अच्छे काम, अच्छी घटनाओं की भी कमी नहीं होती। समाचार-माध्यमों को उनकी जानकारी देकर समाज के मनोबल बढ़ाने, सामाजिक मनोवृत्ति में सार्थक बदलाव का काम तो करना ही चाहिए। ऐसा नहीं कि आज देश में राजनीति, व्यवस्था, संस्थाओं आदि से जुड़े अच्छे व्यक्तियों की कमी है। फिर उनकी तथा उनके कार्यों की जानकारी तो समाज को होनी ही चाहिए। स्पष्टतः, समाचार-माध्यमों की कार्य-पद्धति में सामंजस्यपूर्ण सार्थक बदलाव तो लाया ही जाना चाहिए। आज व्यवस्था एवं समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार की बड़ी चर्चा है; चिन्ता भी। ऐसी चर्चा एवं चिन्ता आवश्यक है। लगता है कि अन्ना हजारे के प्रयास सफल होंगे। लोकपाल बिल आयेगा। आवश्यक है कि अन्ना हजारे एवं उनके लोग इस देश की जनतांत्रिक व्यवस्था एवं जन-प्रतिनिधियों

के प्रति विश्वासपूर्ण सार्थक दृष्टि रखें तथा सरकार के लोग अन्ना हजारे के उद्देश्यों, उनकी पहल को मिले नागरिक समाज के समर्थन को नकारकर तालमेल-पूर्वक ईमानदार पहल करें। ध्यातव्य है कि व्यवस्था में सार्थक बदलाव के लिए अच्छे कानून एवं अच्छी नीति बनायी जानी चाहिए, क्योंकि बुरे कानून एवं गलत नीति के चलते व्यवस्था में गिरावट आती है। अतः हमें सरकार एवं अन्ना हजारे के दल की मिली-जुली पहल का स्वागत करना चाहिए। इसके साथ ही इस बात को नकारा नहींजा सकता कि मात्र कानून बना देने, लोकपाल की नियुक्ति कर देने, एवं सार्थक नीतिगत बदलाव से भ्रष्टाचार नहीं मिट जायेगा, व्यवस्था ठीक नहीं हो जायेगी। इसके लिए हमारी सोच एवं मूल्यों में बदलाव आवश्यक है, जो वर्तमान शिक्षा-पद्धति के रहते बिलकुल संभव नहीं है।आज जो शिक्षा के नाम पर हम अपने बच्चों को दे रहे हैं, वह मात्र सूचना है, बेतरतीबवार सूचना; शिक्षा नहीं। वह बच्चों की सोच में स्वस्थ बदलाव नहीं लाती; उन्हें अपने समाज, परिवेश, संस्कृति, भाषा, परम्परा, धर्म आदि से काटती है। शिक्षा के क्षेत्र में एक ऐसा वर्ग हावी है, जिसके लिए 'देश-भक्ति' गन्दा शब्द है; हमारा अतीत, हमारी परम्पराएँ पिछड़ेपन का प्रतीक हैं। ऐसे में समाज एवं देश के प्रति लगाव एवं त्याग-वृत्ति का अभाव तो होगा ही। जीवन में निहायत भौतिकतावादी, भोगवादी दृष्टि, स्वार्थों की सर्वोपरियता, व्यक्ति एवं परिवार की केन्द्रीयता जिस शिक्षा की ऊपज हैं, उस शिक्षा में बदलाव लाए बिना न व्यवस्था में बदलाव संभव है और न भ्रष्टाचार जैसे सामाजिक/राष्ट्रीय बुराइयों पर नियंत्रण पाना। शिक्षा मेंबदलाव से ही हमारा स्थिति पर प्रभावी नियंत्रण कर पाना संभव होगा, वह चाहे मेडिया के क्षेत्र मे हो या व्यवस्था के।

**बी.बी. कुमार**



# आंतरिक सुरक्षा की चुनौती

**प्रकाश सिंह***

आज अरब देशों में उथल-पुथल मची है। सत्ता परिवर्तन की लहर दौड़ रही है। मिस्र में होस्नी मुबारक का तख्ता कब पलट जाए, कुछ ठिकाना नहीं। यमन, सीरिया और जॉर्डन में भी असंतोष है। इन देशों में अगर जनता के असंतोष के कारणों का विश्लेषण किया जाए तो मुख्य रूप से चार बातें उभरकर सामने आती हैंबेरोजगारी, भ्रष्टाचार, आर्थिक असमानता और एक परिवार की तानाशाही हुकूमत।

सवाल यह उठता है कि क्या ऐसा भारत में भी हो सकता है? सच तो यह है कि उपरोक्त चार में से तीन कारण भारत में भी मौजूद हैं। सबसे बड़ा फर्क यह है कि हमारे देश में लोकतान्त्रिक व्यवस्था है और लोगों के पास अपनी नाराजगी व्यक्त करने के अनेक माध्यम हैं। प्रेस स्वतन्त्र है, जो जब तब सरकार को आड़े हाथों लेती रहती है। स्टिंग ऑपरेशन द्वारा लोगों की पोल खोलती रहती है। न्यायपालिका भी अपनी तरफ से सरकार पर अंकुश लगाती रहती है। हर पाँच वर्ष बाद चुनाव होते हैं, इसमें जनता को सरकार बदलने का मौका मिलता है। ये सब सेफ्टी वॉल्व का काम करते हैं। काइरो जैसे प्रदर्शन भारत में होने की सम्भावना फिलहाल नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि सरकार हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाए। देश के एक बहुत बड़े वर्ग में व्यवस्था के प्रति असन्तोष है, आक्रोश है। यही कारण है कि आज नक्सल आन्दोलन देश के 200 से भी अधिक जनपदों में फैल चुका है और उसका हर वर्ष विस्तार होता जा रहा है। सरकार अपनी तरफ से आर्थिक विकास की योजनाएँ चलाती रहती है, परन्तु उनका लाभ सबसे गरीब तबकों को नहीं मिल रहा है। मनरेगा के तहत एक लाख बारह हजार करोड़ रुपए खर्च हो चुके हैं परन्तु इसका कितना रुपया अधिकारियों, ठेकेदारों और बिचौलियों के जेब में गया, कुछ ठिकाना नहीं। एक तरफ अरबपतियों की संख्या में वृद्धि हो रही है, दूसरी तरफ गरीबी रेखा के नीचे देश की करीब 50 प्रतिशत आबादी जी रही है। आर्थिक असमानता एक भयावह स्थिति तक पहुँच रही है।

* लेखक पूर्व पुलिस महानिदेशक उत्तर प्रदेश, असम एवं सीमा सुरक्षा बल और कई पुस्तकों के लेखक भी हैं।

भ्रष्टाचार के बारे में जितना भी लिखा जाए कम है। ऐसा लगता है कि सभी विभाग के लोग देश की सम्पत्ति लूटने में लगे हैं। इतिहास में नादिरशाह और तैमूर द्वारा दिल्ली की लूट का वर्णन मिलता है। इन विदेशियों ने तो कुछ ही दिनों तक लूट मचाई और उसके बाद खजाना लेकर चले गए। आज तो जो सरकार कुर्सी पर बैठती है उसके कर्णधार शायद यह समझते हैं कि उन्हें अगले पाँच वर्ष तक लूटने का लाइसेंस मिल गया। हर प्रदेश में कमोबेश यही हाल है। भयंकर भ्रष्टाचार के दृष्टान्त उजागर होते हैं, दबाव पड़ता है तो दिखावे के लिए कुछ कार्रवाई हो जाती है। राष्ट्रमंडल भ्रष्टाचार पर सरकार अभी भी पैर घसीट रही है। स्पेक्ट्रम घोटाले में बड़ी मशक्कत के बाद ए. राजा को किसी तरह गिरफ्तार किया गया। इन सब कार्रवाइयों में भी इतना विलम्ब हुआ है कि दोषी व्यक्तियों को अपने विरुद्ध सबूत मिटाने का भरपूर अवसर मिल गया।

विदेशी बैंकों में जमा काले धन के बारे में बराबर हल्ला मच रहा है। भारत में इतना काला धन है कि इससे सारे देश में अगले 150 वर्ष तक प्राथमिक शिक्षा का खर्च वहन किया जा सकता है। जिन लोगों का पैसा है उनका नाम उजागर करने में और पैसा देश में वापस लाने में सरकार को केवल दिक्कतें ही दिक्कतें दिखाई पड़ती हैं, जबकि अमेरिका, जर्मनी, ब्रिटेन अपना बहुत-सा काला धन विदेशों से लाने में सफल हो चुके हैं। हसन अली के बारे में कहा जाता है कि उस पर 50 हजार करोड़ रुपए का टैक्स बकाया है। न तो हसन अली से यह रुपया वसूला जाता है और न ही उसे गिरफ्तार किया जाता है, आखिर क्यों?

कुछ वर्ष पहले मैंने भारत सरकार और बाद में उत्तर प्रदेश सरकार को भ्रष्टतम अधिकारियों की सूची दी थी। मैंने लिखा था कि कई अधिकारी ऐसे हैं जिनके पास 100 करोड़ रुपए से ज्यादा की सम्पत्ति है। उस समय मुझे लगा था कि कहीं मैंने ज्यादा तो नहीं लिख दिया। हाल ही में मध्य प्रदेश में एक आइ ए एस दम्पति पकड़े गए जिनके पास 300 करोड़ से भी ज्यादा की सम्पत्ति मिली। क्या नेता, क्या अधिकारी, सभी देश को लूटने में लगे हैं।

अरब देशों में जो कुछ भी हो रहा है, उसे हमारे नेताओं को कम से कम खतरे की घंटी के रूप में अवश्य लेना चाहिए। विगत 30 जनवरी को भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक जन आंदोलन की शुरुआत हो चुकी है। अगर सरकार नहीं सम्भली तो इसका स्वरूप और आकार भविष्य में बदल सकता है। सरकार को कुछ जरूरी कदम तत्काल उठाने चाहिए। भ्रष्ट मंत्रियों को बदलना काफी नहीं है, उन्हें बाहर निकालना चाहिए और उनके खिलाफ अभियोग चलाए जाने चाहिए। सुप्रीम कोर्ट के एक जज ने हाल ही में भ्रष्टाचार के आरोपी एक केन्द्रीय मंत्री को एक मंत्रालय से दूसरे में बदले जाने को सरकार की 'बेशर्मी' का नमूना कहा। भ्रष्टाचार से निपटने के लिए एक सशक्त और प्रभावी लोकपाल अधिनियम की आवश्यकता है। हमारी जो प्रमुख जाँच



एजेंसियाँ हैं, जैसे सीबीआई या नेशनल इंवेस्टीगेशन एजेंसी, उन्हें राजनीतिक प्रभाव से मुक्त करना होगा। विदेश के बैंकों में जहाँ भी काला धन जमा है, उसे हर हालत में वापस लाया जाए और खातेदारों के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई की जाए। हसन अली जैसे लोगों की सम्पत्ति कुर्क होनी चाहिए। राज्य स्तर पर भी सीआइडी, भ्रष्टाचार निवारण संगठन और विजिलेंस विभाग को स्वायत्तता दी जाए और इनके कार्य में कदम-कदम पर सरकारी अनुमति का जो प्रावधान है, उसे हटाया जाए। पुलिस सुधार सम्बन्धी जो निर्देश सुप्रीम कोर्ट ने दिए हैं उन्हें तत्काल लागू किए जाएँ। केन्द्र सरकार को इसके लिए राज्यों पर दबाव डालना पड़ेगा।

संसद में और राज्य विधानसभाओं में जन प्रतिनिधियों के विरुद्ध संगीन अपराधों के मुकदमे दर्ज हुए हैं और चार्जशीट लग चुकी है, उनको भी बाहर निकाला जाए। यह वर्ग वास्तव में आज के लोकतन्त्र के लिए सबसे बड़ा खतरा है। अगर भ्रष्ट तत्त्वों को ठिकाने नहीं लगाया गया तो वह दिन दूर नहीं जब प्रधानमंत्री के दफ्तर में नोट गिने जाएँगे और देश का गृहमंत्री आपराधिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति बन जाएगा।

इन बिन्दुओं पर कार्रवाई के लिए बड़े राजनीतिक साहस और इच्छाशक्ति की आवश्यकता होगी। सवाल अब यह नहीं है कि यह साहस और इच्छाशक्ति हमें देखने को मिलेगी या नहीं, बल्कि यह है कि देश में लोकतन्त्र बचेगा या यहाँ भी जनता सड़कों पर उतरने के लिए मजबूर हो जाएगी और व्यवस्था में आमूल परिवर्तन के लिए हिंसा का सहारा लेगी।

# मर्यादा राम की

**श्रीराम परिहार***

विजयादशमी का पर्व प्रतिवर्ष आश्विन शुक्ल दशमी को मनाया जाता है। इसी दिन मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने कुमार्गगामी रावण पर विजय प्राप्त की थी। राम की विजय और रावण की पराजय हुई थी। सत्य की विजय और असत्य का पराभव हुआ था। नीति की जीत और अनीति की हार हुई थी। सदाचरण का मस्तक ऊँचा हुआ और कदाचरण का शीश कटा था। धर्म की विजय और अधर्म का नाश हुआ था। अच्छाई की जय-जयकार और बुराई का अन्त हुआ था। भारतवर्ष के अन्तरिक्ष में एक सन्देश व्याप्त हुआ था *सत्यमेव जयते नानृतम्।*

श्रीराम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र और पुरुष श्रेष्ठ थे। पुरुष श्रेष्ठ इसलिए कि वे सत्य, शील और सौन्दर्य के प्रतिमान थे। एक मनुष्य की मर्यादा और उसकी अपरिमेय सम्भावनाओं से वे परिपूर्ण थे। वे मानव होते हुए भी नारायणत्व की उच्चता पर आसीन थे। नर से नारायण बनने की सहज उन्नत क्षमता उनमें थी। वे नीति के नियामक और परिपालक थे। वे सहज-सरल मनुष्य थे। वे धर्म प्रतिपालक थे। उनका विग्रह धर्म रूप ही था। *रामो विग्रह धर्मः।*

रावण स्वर्णमयी लंका का राजा था। वह ज्ञानी था। वेदवेत्ता था। पण्डित था। वेदज्ञ जब पथभ्रष्ट हो जाता है, तो उसकी मेधा विपरीत दिशा में अग्रसर होकर नकारात्मक सोचने और करने लगती है। रावण अपने समय का सर्वथा बुद्धिमान और बलिष्ठ व्यक्ति था। शिव-भक्त था। वह शिव ताण्डव स्तोत्र का रचयिता था। वह दशानन था। कहते हैं उसके दस मुख और बीस भुजाएँ थीं। आज आश्चर्य होता है, दस मुख किसी व्यक्ति के कैसे हो सकते हैं? बीस हाथों वाला व्यक्ति कैसा रहा होगा? वह धर्म को जानने वाला था, पर धर्माचारी नहीं था। मनसा, वाचा और कर्म का जहाँ भेद होगा, व्यक्तित्व निष्प्रभावी होने और चरित्र स्खलित होने में देर नहीं लगती। *धर्मो रक्षितः रक्षति।*

* डॉ. श्रीराम परिहार, प्राचार्य, पता : आजाद नगर, खण्डवा450001



रावण दस सिरों का प्रतीकार्थ है। वह अत्यधिक बुद्धिमान था। किसी भी शब्द या वस्तु की व्याख्या वह सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा दस गुना बुद्धिमत्ता से करता था। सामान्य व्यक्ति जिसका अर्थ, व्याख्या या विवेचन एक गुना करता है, रावण उसकी विवेचना, व्याख्या और अर्थान्विति दस गुना करता था। बौद्धिक आधिक्य से वह परिपूर्ण था। ज्ञान का आधिक्य उपयोगी नहीं हो सकता, यदि विवेक का नियन्त्रण न हो। रावण सोचता था तो समझ के चरम तक चला जाता था। शब्द की व्याख्या अनायास ही दस गुना होकर प्रस्फुटित होती थी। उसके दूत जब उसे आकर यह सन्देश देते हैं कि राम ने समुद्र पर सेतु बनाकर समुद्र पार कर लंका आने का मार्ग बना लिया है, तब उसके मुख से समुद्र शब्द के दस पर्याय एक साथ उद्भाषित होते हैं

*बाँध्यो बननिधि नीरनिधि, जलधि सिन्धु वारीस।*
*सत्य तोयनिधि कंपति, उदधि पयोधि नदीस ॥*

यह रावण की सकारात्मक सोच है, जो बुद्धि की रज्जु के सहारे ज्ञान-मर्म के शिखरों तक पहुँचने की क्षमता रखता है। यही स्थिति शिव ताण्डव स्तोत्र की रचना में देखी जा सकती है। लेकिन यही बुद्धि जब टूटती है, तो दस गुना गहरी खाई में पहुँचा देती है। रावण की उर्ध्वमुखी सोच उसे ज्ञानी-पण्डित बनाती है। उसकी विपरीत या प्रतिकूल सोच उसे राक्षसों की कोटि में पटक देती है। ज्ञान तो बहुत है, विवेक गुम हो जाता है। विवेक के अभाव में सद्-असद् की पहचान ठीक-ठीक नहीं हो पाती और कुपंथ पर बढ़ते हुए विनाश की आशंका का साथ भी छूट जाता है। एक-एक कर दुर्गुण कुमार्ग पर धकेलते रहते हैं। नारी का अपहरण, चोर का कर्म, जटायु के रूप में धर्माचरित जीव की हत्या, परनारी का मोह, युद्ध की लालसा, अहंकार का आभूषण, बल-वैभव का अंधापन, स्त्री (पत्नी) की सीख का उपहास, साधु की अवज्ञा, नगर का विध्वंस, कुल का नाश और स्वयं का सर्वनाश करके ही रावण का चरित्र अपनी नियति और परिणति को प्राप्त होता है। मोह का अन्त, अहंकार का अन्त, अविवेक का अन्त, अधर्म का अन्त और असत्य का अन्त होता है।

*सेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सो तनु भूमि परेउ भरि छारा ॥*
*वरुण कुबेर सुरेस समीरा। रन सनमुख धरि काहुँ न धीरा ॥*
*भुजबल जितेहुँ काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं ॥*
*जगत विदित तुम्हारी प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई ॥*
*राम विमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा ॥*

यह सृष्टि त्रिगुणात्मक है। सत, रज और तम गुण अपने-अपने अनुपात और प्रभाव से प्रत्येक जीव, वस्तु और मनुष्य को संचालित करते रहते हैं। ये तीनों गुण ही

कभी बहुकोणीय और कभी दो ध्रुवीय स्थिति पैदा करते हैं। धर्म-अधर्म, जन्म-मृत्यु, गति-अगति, चेतन-जड़, प्रकाश-अंधकार, दिन-रात, कर्म-अकर्म, अच्छा-बुरा, गुण-अवगुण, मनुष्य-राक्षस तथा निर्माण-विनाश की अनुकूलता-प्रतिकूलता के रथ पर आरूढ़ यह सृष्टि चल रही है। पुण्य-पाप की अवधारणाएँ इन्हीं के सन्दर्भों से जन्मी हैं। *'जड़-चेतन' गुण-दोषमय, विश्व कीन्ह करतार; संत-हंस गुन गहहिं पय, परिहर वारि विकार।'* विधाता ने इस विश्व की संरचना जड़-चेतन, गुण-दोष युक्त की है। इस विश्व में संत-हंस स्वरूप हैं, जो गुण रूपी दूध को ग्रहण कर लेते हैं तथा पानी रूपी विकारों को छोड़ देते हैं।

संतत्व की प्राप्ति बहुत कठिन है। अच्छे-अच्छे ज्ञानी और सिद्ध भी पूर्णतः विकार रहित नहीं हो पाते हैं, तब साधारण सांसारिकों की क्या कहें। इस संसार में सन्त-सा जीवन जीना यानि मनुष्यता का वरण करना है। नाना प्रकार के मोह जनित संशयों से मुक्त हो जाना है। परन्तु यह सरल नहीं है। संसार को समझकर उसमें विमुक्त होकर रहना घनघोर साधना से ही सम्भव है। साधु या सन्त या सज्जन कहलाना आसान है, संतत्व या सज्जनता का प्राप्य होना मुश्किल है। शिखर पर चढ़ना सम्भव है, शिखर पर पहुँचकर बहुत देर तक टिके रहना दुष्कर है। *'साधु कहावत कठिन है, ऊँचा पेड़ खजूर; चढ़ै तो पीवै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर।'*

हम प्रतिवर्ष विजयादशमी के दिन रावण का पुतला जलाकर यह मान लेते हैं कि बुराई का नाश हो गया। परन्तु देखने में यह आता है कि विश्व में बुराइयाँ और बढ़ रही हैं। सारा संसार आतंकवाद से त्राहि-त्राहि कर रहा है। 9/11 में पेंटागन और 11/26 में मुम्बई के आतंकी हमले ताजा हैं। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को ग्रसने पर तुला हुआ है। चीन और पाकिस्तान की भारत के साथ सामरिक उत्कण्ठा अशुभ है। एक ही राष्ट्र में धर्म, जाति, भाषा, प्रान्त के झगड़े आपसी सद्भाव और शान्ति को भंग कर रहे हैं। पारिवारिक कलहों में व्यक्ति का रामत्व सहमा हुआ है और रावणत्व ठठाकर हँस रहा है। नारी अभी भी शिक्षा से दूर है। उसका अपमान, अपहरण और अवमान अभी बन्द नहीं हुआ है। आज भाई-भाई में अनबन है। संघर्ष और वैमनस्य की दीवारें उठ गई हैं। व्यक्ति स्वयं भी अशान्त और ईहामृग बनकर भटक रहा है। स्वयं के भीतर अनगिनत विकारों को पोषित करता हुआ वह प्रकारान्तर से अपने अन्तस में रावण को स्थान दे रहा है। तब फिर प्रतिवर्ष या प्रतिदिन पुतला जलाने से रामराज्य स्थापित नहीं होगा। जीवन में रामत्व का आग्रह होना चाहिए। प्रकाश को लाने में प्रयास करना होता है, अंधकार तो सहज फैल जाता है। जीवन को सँभालकर जीने में श्रम और समझ लगती है; मरण के लिए कुछ नहीं करना पड़ता है, वह तो असावधान को दबोचने में पीछे नहीं।

रावण प्रतीक है बुराई का, असत्य का, अनीति का, अहंकार का, स्खलित ज्ञान का, बौद्धिक अतिवादी नकारात्मकता का, कुचेष्टा के चरम का, एक ऐसे जीवन



काजो स्वर्णमय भवनों के बीच उद्वेलित और अशान्त रहता है। स्वयं की शक्ति पर जिसे भरोसा है, किन्तु एकदम-बहुत डरा हुआ है। विनय पत्रिका में तुलसीदास ने रावण के और उसके कुल-कुटुम्ब की प्रतीकार्थों का उल्लेख किया है

*मोह दशमौलि, तद्भ्रात अहंकार, पाकारिजित काम विश्रामहारी।*
*लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध पापिष्ठ विबुधान्तकारी ॥*
*द्वेष दुर्मुख, दंभ खर, अकंपन कपट, दर्प मनुजाद, मद-शूलपानी।*
*अमित बल परम दुर्जय निशाचर-निकर सहित षड्वर्ग गो-यातुधानी ॥*

लंका में मोहरूपी रावण, निवास करता है। अहंकार कुम्भकरण है। शान्ति नष्ट करने वाला कामरूपी मेघनाद है। लोभरूपी अतिकाय, मत्सर रूपी महोदर, क्रोध रूपी देवान्तक, द्वेष स्वरूप दुर्मुख, दम्भ रूपी खर, कपट रूपी अकम्पन, दर्प रूपी मनुजाद और मद रूपी शूलपाणि राक्षस है। रावण के इस दुष्ट महाराज परिवार के बीच में जीव रूपी विभीषण निवास करता है।

इस रूपक के प्रतीकार्थ जीवन के विस्तार और परिचालन के व्यापक अर्थ खोलते हैं। इस देह को हम सोने का पिंजरा भी कहते हैं। यह शरीर स्वर्णजटित-स्वर्णसज्जित लंका के समान ही है। रावण के दस शीश हैं। रावण स्वयं अर्थात् यह देह जनित जीवन मोह रूप ही है। मोह रावण है। उसके दस शीश-अहंकार, काम, लोभ, मत्सर, क्रोध, द्वेष, दम्भ, कपट, दर्प और मद के प्रतीक हैं। इन सब के बीच जीव रूपी विभीषण रहता है। जीव रूपी विभीषण का उद्धार श्रीराम अर्थात् सत्य-शील-सौन्दर्य की शरण में आकर ही सम्भव है। श्रीमद्भगवत गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं *'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'*

इस संसार को अनेक प्रकार से देखा-समझा गया है। यह संसार ओस का मोती है, सुबह होते ही इसे मिट जाना है। यह काया गार-सी (ओले के समान) काची है, इसे थोड़ी देर में गल जाना है। यह बात ज्ञानी-अज्ञानी दोनों जानते हैं। यह नहीं है कि यह जान लेने के बाद वैराग्य धारण कर लेना चाहिए। नहीं, ऐसा नहीं है। यह समझ जाने के बाद जीवन को मनुष्यता के तत्त्वों से भरते हुए संसार और समाज को गतिशीलता और परिवर्तनशीलता की सही दिशा दिखाना चाहिए। जीवन जीने के लिए है, सोते रहने या विनाश की ओर जाने के लिए नहीं। मरण निश्चित है, उसका आग्रह और जप ठीक नहीं। उससे निराशा और निष्क्रियता उपजती है। ये दोनों ही जीवन को जड़ बनाती हैं। जड़ता चैतन्य का गुण नहीं। मनुष्य सर्वथा चैतन्य-प्राणी है। वह नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का आराधक और धारक है। मनुष्य देवत्व तक पहुँचने की सम्भावना स्वयं में समाए हुए है।

मनुज के मनुजत्व को अवरोधित सबसे ज्यादा तो अन्तस के विकार ही करते हैं। रावण जैसा गुणी शिव-भक्ति से च्युत होकर माया के परिवार के सदस्यों से घिर

गया और सर्वनाश को प्राप्त हुआ। माया का फंदा बहुत विकट हैपानी के भँवर जैसा। मोह में कौन अंधा होने से बच सका है? काम-वासना किसे नहीं नचाती है? तृष्णा के वशीभूत हो कौन पागल सरीखा नहीं भटकता है? क्रोध से किसका हृदय नहीं जलता है? लोभ ज्ञानी, तपस्वी, वीर, कवि, गुणी सबको ग्रसता है। मद किसे नहीं होता? प्रभुता किसे बधिर नहीं बना देती है? मृगलोचनी के नेत्रों के बाण से कौन घायल नहीं हुआ है? यौवन के ज्वर से कौन पीड़ित नहीं होता? ममता के अतिशयता ने किसे अपयश नहीं दिया है? मत्सर ने किसी कलंकित नहीं किया है? शोक ने किसे विचलित नहीं किया? चिन्ता ने किसे नहीं डँसा? इस संसार में रहते हुए कौन है, जिसे माया नहीं व्यापती? मनोरथ रूपी कीट से किसका शरीर खोखला नहीं हुआ? पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा ने किसकी मति मलिन नहीं की है? यह सब माया का सबल परिवार है, जो संसार और सांसारिक को अपने प्रबल प्रभाव से प्रभावित करता रहता है।

*व्यापि रहेहु संसार महुँ, माया कटक प्रचंड।*
*सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखंड ॥*

उपर्युक्त सभी बातें और विकार पृथ्वी पर विचरने वाले शरीरधारियों में होना स्वाभाविक है, क्योंकि जन्म के साथ ही सांसारिकता उपस्थित है। जीव शरीर धारण कर संसार में आता है। संसार का अपना गुण और स्वभाव है। उसके बीच में आकर उसके संस्पर्श से मनुष्य बच नहीं सकता। *'ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुखरासी ॥ सो मायाबस भयहुँ गोसाईं, बन्ध्यो कीर मरकट की नाईं ॥'* यह बंधन कितना मजबूत और कसा हुआ है; इस पर मनुष्य की गति-अवगति दर्शित है। संसार में रहते हुए और परिवार तथा राष्ट्र के दायित्वों का निर्वाह करते हुए लाभ-लोभ, शुभ-स्वार्थ का अंश तो जीवन में घर बसाएगा ही, परन्तु वह घर में आपके भौंह-भृकुटि संकेतों पर काम करे, आपका अनुचर बनकर रहे; घर-मालिक नहीं बन जाए। घर-मालिक बनकर वह रहेगा तो आपकी (जीवन की) दिन-रात दुर्गति होती रहेगी। हमारे पास रावण-कंस-दुर्योधन से लेकर वर्तमान के अनेक देशों, परिवारों, व्यक्तियों के उदाहरण हैं। अति किसी भी गुण-दोष की उचित नहीं होती। समभाव और समतोल ही कल्याणकारी और श्रेयस्कर है। समभाव और शान्तचित्त से कर्म करना ही सफलता का आधार बन सकता है। *'कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः।'* (अथर्ववेद-7/52/8) मेरे दाहिने हाथ में कर्म (पुरुषार्थ) है और बाएँ हाथ में सफलता विराजमान है।

वैराग्य नहीं, कर्म की बात कर रहे हैं। हमारे स्व के जो कर्म हैं, वे इतने निष्पाप हों कि कर्म ही ईश्वर की पूजा बन जाएँ। निरभिमानी होकर संसार में रहना, धर्म सम्मत कर्म की सम्पन्नता और ईमानदारी और अपरिग्रह भाव से उद्योग-धन्धा-व्यापार-



कृषि-नौकरी-मजदूरी करते हुए धन कमाना ईश्वर-पूजा ही है। ऐसी दशा में हमारा कर्म ही धर्म बन जाता है। निरहंकार जीवन में शान्ति लाता है। अहंकार ही मान की चिन्ता करता है। अहंकार व्यक्ति का सबसे बड़ा नुकसान यह करता है कि वह जीवन से शान्ति को नष्ट कर देता है। रावण के पास स्वर्ण की लंका का वैभव और परिवार-सदस्यों की विपुलता होने के बाद भी वह अहंकार-भ्राता के संग रहने के कारण शान्ति के रिक्थ से रिक्त था। निर्मम होकर अहंकार का दमन करने से ही शान्ति का पथ बुहारा जा सकता है। जथा-लाभ-सन्तोष को भक्ति का आठवाँ प्रकार माना गया है। *आठवँ जथालाभ सन्तोषा, सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥*

इसलिए भोगवाद और बाजारवाद के त्याग से भी विश्व-शान्ति की एक राह खुलती है। भोगवाद और बाजारवाद का नाश होगा, तो साम्राज्यवाद अपने आप शक्तिहीन हो जाएगा। वर्तमान में यह भी एक प्रकार की साधना है, जो जीवन और विश्व दोनों की सद्संस्कृति के रक्षण हेतु आवश्यक है। आज विश्व-मंच पर जो कुछ नाटक की तरह प्रस्तुत हो रहा है, उससे सावधान रहने की चेतना का आग्रह है। सावधानी हटी कि दुर्घटना घटी। दृष्टि का सही होना ही सही मार्ग पर चलना अनिवार्य करेगा। सही मार्ग ही रामत्व (सद्गुणों) तक ले जाएगा। मनुष्यता ही मनुष्य को श्रेष्ठ बनाती है। राम स्वयं आलोक हैं, इसलिए इसे पाने हेतु उसके मार्ग में अन्य आलोक की आवश्यकता नहीं है। स्वयं का प्रकाश ही राम के प्रकाश का कण-पुञ्ज है। *'राम प्रकाश्य प्रकाशक जेते।'*

राम मर्यादा के पालक हैं। धर्म-धुरीण हैं। *'श्रुति-सेतु पालक राम, तुम जगदीश माया जानकी।'* राम नाम की वन्दना में गोस्वामी तुलसीदास ने व्यापकत्व रख दिया है। यह वाणी का विलास नहीं; अनुभव का प्रमाण है। वे कहते हैं *'बन्दौ नाम राम रघुवर को, हेतु कृसानु भानु हिमकर को।'* मैं रघुवर राम के नाम की वन्दना करता हूँ, जो अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा का कारक है। अन्य मन्त्र देवताओं के प्रकाश से प्रकाशित हैं। गायत्री मन्त्र में सूर्य का प्रकाश है। शाबर मन्त्र में शिव की शक्ति का आलोक है। राम नाम में अग्नि, सूर्य, चन्द्र का प्रकाश-स्रोत है। 'राम नाम' स्वयं प्रकाशित है और यह अग्नि, सूर्य, चन्द्र को प्रकाशमान किए हुए है। 'राम' शब्द 'र', 'अ' और 'म' तीन अक्षरों से है। ये तीनों ही बीजाक्षर हैं। 'र' अग्नि बीज है। 'अ' सूर्य बीज है'। 'म' चन्द्र बीज है।

*रकारोऽनलबीजं स्याद्ये सर्वे वाड़्वादयः।*
*कृत्वा मनोमलं सर्वे भस्म कर्म शुभाशुभम् ॥*
*अकारो भानु बीजं स्याद्वेदशास्त्र प्रकाशकम्।*
*नाशयत्येव सद्दीप्त्या याऽ विद्या हृदये तमः ॥*
*मकारश्चन्द्रबीजञ्च पीयूषपरिपूर्णकम्।*
*त्रितापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति च ॥ (महारामायण 52/62, 63, 64)*

'र' अग्नि बीज है। अग्नि वस्तु के भीतर के सारे विकारों को जलाकर उसे शुद्ध बना देती है। उसके मल-दोष को जलाकर उसको विशुद्ध रूप में कर देती है। उसी प्रकार 'र' के उच्चारण से मन के विषय-वासनाओं का नाश हो जाता है। व्यक्ति को अपने शुद्ध स्वरूप या आत्मस्वरूप का बोध होने लगता है। 'अ' भानु बीज है। जैसे भानु के उदय से अंधकार मिट जाता है, वैसे ही 'अ' के उच्चारण से व्यक्ति के भीतर जो मोह-मत्सर आदि अविद्या के कारक हैं, उनका नाश हो जाता है। 'म' चन्द्र बीज है। चन्द्रमा का सम्बन्ध मन से है। उसमें अमृत है। अतः शीतलता है। वह शरदातप हरता है। शरद ऋतु के दिनों की गर्मी प्रखर होती है। कहते हैं क्वार के घाम में हरिण की पीठ काली पड़ जाती है। कन्या राशि का सूरज तपता है, फसलें पकती हैं। शरद के इस ताप को चन्द्रमा शीतल करता है। न केवल शरदातप, वरन् छहों ऋतुओं की रात्रियों को शीतलता प्रदान करता है। उसी प्रकार 'राम' शब्द के 'म' अक्षर से त्रिताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) दूर होते हैं। हृदय शीतल होता है। तृप्ति उत्पन्न होती है जीवन से कलुष नष्ट होते हैं, तो वैराग्य उत्पन्न होता है। अविद्या नष्ट होती है तो ज्ञान प्रकटता है। त्रिताप नष्ट होते हैं तो भक्ति उपजती है। 'राम' शब्द वैराग्य, ज्ञान और भक्ति का कारक है।

*रकार हेतु वैराग्यं, परमं यज्च कश्यते।*
*अकारो ज्ञानहेतुश्च, मकारो भक्तिहेतुकम् ॥*

हमने वाल्मीकि रामायण का आधार लेकर राम को *रामो विग्रह धर्मः* कहा है। हमारा धर्म से आशय कर्मकाण्ड युक्त कर्मणा से नहीं है। हमारा मन्तव्य सीधा-सीधा सत्य, शील और सौन्दर्य से युक्त विग्रह द्वारा किए गए सदाचरण और सत्कर्म से है। *'धर्म न दूसर सत्य समाना'* और *'परहित सरिस धरम नहिं भाई'* से भिन्न हमारा मन्तव्य और पहुँच नहीं है। राम की सम्पूर्ण मर्यादा इसी धर्माश्रित है। वे इसी धर्म के लिए प्रकट हुए। *'धर्म हेतु अवतरेहुँ गोसाईं।' या 'प्रभु अवतरेहुँ हरन महि भारा।'* यह शरीर भी भूमि तत्त्व-संयुक्त है। राम का प्राकट्य होते ही हृदय प्रशान्ति की नीलिमा से भर जाता है। देह जनित जीवन हल्का हो जाता है। जीवन अच्छा-अच्छा लगने लगता है। जीने का अर्थ हाथ लग जाता है। राम धर्म भी हैं। धर्मपालक भी हैं। धर्म संस्थापक भी हैं।

रावण का अर्थ हैरुलाने वाला। जो लोक को रुलाए; दुःख दे; वह रावण है। *'रावयति सर्वान् लोकान इति रावणः।'* रावण ने अपने समय में समस्त लोकों, लोकपालों और उन लोकों के निवासियों को आंतकित और दुःखी कर रखा था। प्रकारान्तर से सोचने पर पाते हैं कि रावण के प्रतीकार्थ ही लोक को दुःखी करते हैं और लोक उनके वश में होकर रोता रहता है। हमारा अतिशय मोह, कामनाएँ, अपेक्षाएँ, द्वेष, पाखण्ड, क्रोध, लोभ, मद, कपट, दर्प ही हमें रुलाता है। प्रत्येक पंथ



इनसे विरत होकर जीने की बात करता है। हिंसा सर्वत्र वर्जनीय है। परन्तु कहीं प्रत्यक्ष हिंसा (जीव हिंसा) कहीं भाव हिंसा हो रही है। *'जीवो जीवस्य भोजनम्'* और *'मनुष्यो मनुष्यस्य शत्रुम्'* बना हुआ है। एक व्यक्ति दूसरे को परास्त और पछाड़ने पर तुला हुआ है। अर्थ-पिपासा इतनी प्रबल हो उठी है, जितनी रावण में मोह-पिपासा और दुर्योधन में युद्ध-पिपासा थी तथा अमेरिका में जितनी प्रभुत्व-पिपासा है। स्वर्ग-नरक कहाँ और किस रूप में है; इसका तो कोई प्रमाण नहीं है, लेकिन अच्छे-बुरे कर्मों पर आधारित प्राकृतिक न्याय मिलने के प्रमाण इस संसार में अवश्य दिखाई देते हैं। कहते हैं ईश्वर की लाठी की मार पड़ती है तो आवाज नहीं होती। यह भी कहा जाता है *'चोर की माय मुँह छिपा कर रोती है।'*

अच्छाई और बुराई तथा सत्य और असत्य में युद्ध निरन्तर चलता आ रहा है। यह युद्ध वाह्य जगत और मनुष्य के जीवन में भी अविरत है। संसार में यह दिखाई देता है, जीवन में अदृश्य रहता है। परिणाम दोनों के प्रत्यक्ष होते हैं। रावण को लंका की रणभूमि में पछाड़ने के लिए राम धनुष-बाण का सहारा लेते हैं। यह शरीर भी स्वर्णमयी लंका है। एक तरह से युद्ध भूमि है। इस लंका में मोह रूपी रावण अपने परिवार के साथ रह रहा है। उसका परिवार विकारों-दोषों के सदस्यों वाला है, जिसकी चर्चा पूर्व में की जा चुकी है। उसे परिवार सहित पराभूत करने के लिए राम युद्ध भूमि में उतरते हैं। *'रावण रथी विरथ रघुबीरा, देखि विभीषण भयहुँ अधीरा।'* रावण रथ पर सवार है और राम बिना रथ के हैं। पैदल हैं। बिना पदत्राण के हैं। रावण पूरी तरह अस्त्र-शस्त्र से सज्जित है। वह रथी है। महाभारत में चार प्रकार के रथी का वर्णन आता हैअर्द्धरथी, रथी, महारथी, और अतिरथी। जो अकेला पाँच सौ वीरों से लड़ सके, वह अर्द्धरथी, जो एक सहस्र से लड़ सके वह रथी, जो दस सहस्र धनुर्धारियों से लड़ सके वह महारथी और जो असंख्य धनुर्धारियों से अकेला लोहा ले सके, व अतिरथी होता है।

राम को विरथ देखकर विभीषण अधीर हो जाते हैं। राम ने विभीषण को जो उपदेश उस समय दिया, उससे विभीषण की शंका का निवारण होता है और यह श्रीमद्भगवद्गीता के समतुल्य है। जिस रथ से वास्तविक जीत होती है, वह और ही है। *'जेहि जय होई सो स्यन्दन आना।'* वह आन्तरिक है। आध्यात्मिक है। नैतिक है। सदाचरित है। विजय आज भी सेना और युद्ध सामग्री पर नहीं; विजेता की बुद्धि, चरित्र, आत्मबल और साहस पर निर्भर होती है। विश्वामित्र के शस्त्र बल से वशिष्ठजी का आत्मबल प्रबल था। राम-रावण युद्ध में राम की धर्मबुद्धि, विवेक, नीति, मर्यादा और आत्मबल की ही रावण की पाप-बुद्धि, अविवेक और भीति पर जय हुई।

शूरता या पराक्रम और धैर्य जिसके रथ के चाक हों। सत्य, शुभ चरित्र की जिस पर ध्वजा फहरा रही हो। बल, विवेक, दम (बाह्य प्रकृति का दमन) और परहित

जिसके रथ के चार घोड़े हों। (धर्म रथ के यही चार घोड़े हैं) क्षमा, कृपा, समता की बल्गाएँ हों। ईश्वर भजन ही चतुर सारथी हो। वैराग्य ढाल हो और सन्तोष की तलवार हो। दान का फरसा और बुद्धि का बल हो। श्रेष्ठ विज्ञान कठोर धनुष हो। निर्मल अचल मन तरकश के समान हो। शम, यम और नियम ही जिसके बाण हों। गुरु की पूजा (सेवा) जिसका अभेद्य कवच हो। हे सखा! ऐसा धर्ममय रथ जिसका हो, उसके लिए हर-प्रकार के शत्रु को जीतना सहज-सम्भव है। *'सखा धर्ममय अस रथ जाके, जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।'* इस देह को भी रथ का रूपक दिया जाता है। जीवन भी रथ के समान गतिशील है। जीयन यदि धर्म रथ बन जाए, तो व्यक्ति अजातशत्रु हो सकता है। धर्म रथ के अंग हैंशौर्य, धैर्य, सत्य, शील, बल, विवेक, दम, परहित, क्षमा, कृपा, समता, ईश्वर-भजन, वैराग्य, सन्तोष, दान, बुद्धि, बर-विज्ञान, निर्मल अचल मन, शम, यम, नियम, विप्र सेवा और गुरु पूजा। राम स्वयं इस धर्म रथ के समस्त अंगों से सज्जित हैं *'गुन ज्ञान निधान अमान अजं, गतक्रोध सदा प्रभु बोधमयं।'*

राम ने यह उपदेश विभीषण को प्रबोधने के लिए दिया। विभीषण की अतिशय प्रीति राम के प्रति है। मंथन किया जाए तो यह भी निष्कर्ष निकले कि द्वापर युग में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए ज्ञान के अनुरूप त्रेता में श्रीराम जीवन जी चुके थे। श्रीमद्भगवद्गीता के सारे मूल्य श्रीराम के चरित्र में विद्यमान हैं। एक युग-पुरुष अपनी चारित्रिक श्रेष्ठता से धरती पर श्रेष्ठ जीवन के सारे प्रतिमान स्थापित कर देता है। राम ऐसे ही पुरुष-श्रेष्ठ हैं। वे इतिहास से परे मानव-मन की निरन्तर प्रवाहित होती गुणधारा की तरलता, शीतलता और शुचिता के संकेन्द्रण और सम्मोहन हैं। वे पावन हैं और पावनकर्त्ता हैं। वे उद्धार हैं और उद्धारकर्त्ता हैं। वे श्रीराम हैं और रामत्व से भक्त को निरन्तर भरने वाले हैं।

राम सब कहीं हैं। वे अयोध्या में हैं। वे प्रत्येक जन-मन के श्रद्धासन पर विराजित हैं। वे केवट के प्रिय हैं। शबरी के आराध्य हैं। निषादराज, सुग्रीव और विभीषण के सखा हैं। वे सीतापति हैं। कौशल्या की गोद में मुदित बैठे हैं। अहल्या को उसकी खोई हुई प्रतिष्ठा लौटाते हैं। वे कैकेयी के दुलारे हैं। सरयू-सरिता का तट उनसे पुलक-पुलक हो उठता है। वे शबरी से कहते हैं *'कह रघुपति सुनु भामिनी बाता, मानहुँ एक भगति कर नाता।'* वे नातों को निबाहते हैं। ऐसा ही भगति-वत्सलता का नाता वे ओरछा की रानी कुँवरि गनेश से निबाहते हैं। ओरछा में वे रानी की भक्ति के वशीभूत होकर ही आए हैं। अयोध्या से ओरछा उनका आगमन संवत् 1631 में चैत्र सुदी नवमी (रामनवमी) को हुआ। ऐसा योग लग्न, ग्रह, वार, तिथि का संयोग रामजन्म के बाद संवत् 1631 में चैत्र सुदी नवमी को आया था। इसी दिन-संवत् को गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। इसी दिन ओरछा की रानी कुँवरि गनेश की भक्ति ने श्रीराम को राम राजा के रूप में ओरछा का राज्य



सौंपा। बेतवा की धारा इसकी साक्षी है। राम दिन में ओरछा में रहते हैं और रात्रि विश्राम अयोध्या में करते हैं।

*बैठे जिनकी गोद में, मोद मान विश्वेश।*
*कौशल्या सानी भई, रानी कुँवरि गनेश ॥*
*मधुकरशाह महाराज की, रानि कुँवरि गनेश।*
*अवधपुरी से ओरछा, लाई अवध नरेश ॥*
*सर्व व्यापक राम के, दो निवास हैं खास।*
*दिवस ओरछा रहत हैं, शयन अयोध्या वास ॥*

सृष्टि और जीवन दोनों के दो पक्ष हैंउज्ज्वल और मलिन। सत्य और असत्य। सत्य से सृष्टि और जीवन परिचालित है। अन्तस में रावण का निवास होने पर जीवन बिखर जाता है, जैसे रावण का पूरा परिवार छार-छार हो जाता है। सत्य का, शील का, सौन्दर्य का आग्रह और आधान जीवन को शुचिता, सौन्दर्य और शान्ति से आपूरित करता है। मनुष्य को उसके होने की सार्थकता प्रदान करता है। सद्गुणों के बिना मनुष्य जीवन बिना पानी के बादल जैसा है

*भगतिहीन नर सोहहिं कैसे; बिनु जल वारिद पेखिय जैसे।*

# सेतु समद्रुम-नल सेतु सुदुष्करः

**राजीव रंजन उपाध्याय***

हमारे राष्ट्रीय महाकाव्य रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत इतिहास के मधु हैं। मिथक न होते हुए भी वे इतिहास के मधु को हमारे समाज में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि यह महाकाव्य अनेक सहस्राब्दियों के उपरान्त भी हमारी चेतना में रमें हैं, बसे हैं। वे प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में हमारी राष्ट्रव्यापी चेतना का अंश बन चुके हैं। हमारी पहचान बन चुके हैं।

इतिहास का वह अंश जो चेतना मूलक होता है, चेतना सम्पन्न होता है, वही कालान्तर में मिथकीय आकृति धारण कर लेता है। वास्तव में बिना तथ्य के मिथकीय प्रसंग नहीं उभरते हैं और तथ्यात्मक इतिहास, नग्न इतिहास घटनाओं का मात्र अस्थि सदृश्य आधार होता हैविस्तार का साध्य होता है। वह न तो अपने में पूर्ण ही होता है और न देशकालिक स्तर पर सर्वस्वीकार्य ही किया जाता है। नग्न इतिहास जड़ है, वह मात्र कागजी लेखा-जोखा है, परन्तु इतिहास का मानवी अंश जिसको संवेग और संकल्प का स्रोत बनना होता हैवह समय प्रवाह में, काल प्रवाह में उत्प्लावित होते हुए, एक मिथकीय स्वरूप, आकृति ग्रहण कर लेता है।

मिथक एक प्रकार से घटित इतिहास के अंश को अपनी नाभि में धारण किए रहता है तथा ध्यान और कल्पना के रस बोध से पूर्ण रहता है। यदि इस तथ्य को ध्यान में रखकर, केन्द्र में रखकर, हम राम, रामकथा और नल सेतु प्रकरण पर दृष्टिपात करें, तो तथ्य मंथनोपरान्त नवनीत सम स्वतः स्पष्ट हो उठते हैं।

रामकथा का उत्स वाल्मीकि की रचना रामायण है, जो आदि काव्य है और उसके रचयिता आदि कवि, वाल्मीकि सर्वसम्मति से स्वीकार्य हैं। उन्हें श्रीराम का समकालीन भी माना जाता है तथा अप्रत्यक्ष रूप से वे रामकथा के एक पात्र के रूप में माने जाते हैं, जिनका प्राकट्य रामायण के उत्तरकाण्ड में होता है। यद्यपि अधिकांश

* पूर्व प्रोफेसर, कैंसर शोध, तबरीज विश्वविद्यालय, तबरीज, ईरान
पता : 'विज्ञान' परिसर कोठी काके, बाबू, देवकाली मार्ग, फैजाबाद-224001



विद्वानों की मान्यता है कि प्रथम और सप्तम काण्ड मूल रचना के अंश नहीं हैं तथा यह प्रक्षिप्त हैं। परन्तु इसके उपरान्त भी इन दोनों काण्डों के केन्द्रीय वृत्त ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं क्योंकि वे पौराणिक परम्परा पर आधारित हैं। वैसे प्रक्षेप प्रत्येक काण्ड में वर्तमान है और इस प्रकार यह कह पाना अति दुष्कर है कि वाल्मीकि की मूल रचना कौन-सी है। परन्तु इस तथ्य के उपरान्त भी मूल कथा का भाव सर्वत्र व्याप्त है और गम्भीर अनुशीलन प्रक्षिप्त अंशों को उद्भासित कर देता है।[1]

रामायण के प्रक्षिप्त अंशों को समाहित किए हुए आधुनिक संस्करणों पर दृष्टिपात स्पष्ट करता है कि इनमें छह काण्ड 500 सर्ग और 24 हजार श्लोक हैं तथा बताया जाता है कि उत्तरकाण्ड भी ऋषि वाल्मीकि की ही कृति है।[2] परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ईसवी सन् के प्रारम्भ में रामायण में मात्र 12,000 श्लोक थे क्योंकि कात्यायनीपुत्र कृत 'ज्ञान प्रस्थान' नामक ग्रन्थ में तथा उसकी महाविभाषा नामक टीका में, स्पष्ट किया गया है कि रामायण नामक ग्रन्थ में मुख्यतः दो विषयों की चर्चा हैरावण द्वारा सीता का बलपूर्वक अपहरण तथा राम द्वारा सीता का उद्धार एवं अयोध्या आगमन जो कि 12,000 श्लोकों में वर्णित हैं; महाविभाषा सम्भवतः कनिष्क के शासन काल की रचना है।[3] यह तथ्य संकेत करता है कि विगत दो हजार वर्षों में रामायण का कलेवर करीब-करीब द्विगुणित से अधिक हो गया। यह भी असम्भव नहीं है कि उस महाविभाषा के समय में भी रामायण में प्रक्षिप्त अंश विद्यमान रहे हों, परन्तु इसके विषय वस्तु में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। क्योंकि स्वतः रामायण (राम+अयन=रामायन, राम की यात्रा) में वर्णित है कि इसमें सीता का चरित्र एवं पौलत्स्य रावण-वध की कथा है।[4]

उपलब्ध रामायण के विस्तृत कलेवर के सन्दर्भ में स्वतः इसके उत्तरकाण्ड में निहित संकेत है कि मूल रामायण का गान कुश एवं लव द्वारा राम दरबार में प्रातः से अपराह्न तक किया गया था, जिसे सुनकर श्रोता मंत्रमुग्ध हो गए थे। इसके उपरान्त श्रीराम ने अनुज भरत को आज्ञा दी थी कि दोनों गायकों को समुचित ढंग से पुरस्कृत किया जाए।[5] स्वाभाविक है कि मूल रामायण का गान पूर्ण हो गया था, अन्यथा गायकों को पुरस्कृत करने का प्रश्न उठता ही नहीं। यह तथ्य संकेत करता है कि मूल रामायण को विगत दो हजार वर्षों में प्रक्षिप्त कर दिया गया है और उपलब्ध रामायण इसी का परिणाम है। पुनः इसी सन्दर्भ में ध्यान देने वाला एक अन्य तथ्य है कि स्वयम् काव्य में, वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में कहा गया है कि कवि ने सैकड़ों श्लोकों की रचना की, न कि हजारों श्लोकों की।[6]

श्रीराम की कथा संस्कृत नाटककार महाकवि भास (द्वितीय शताब्दी ई. पूर्व को ज्ञात थी तभी उन्होंने प्रतिमा एवं अभिषेक नामक रामायण कथा पर आधारित नाटकों की रचना की। इसका समर्थन कौशाम्बी से प्राप्त और इलाहाबाद-संग्रहालय में संग्रहीत पकी मिट्टी के एक फलक पर रावण द्वारा सीता हरण का दृश्य अंकित है, जो दूसरी शताब्दी ई.पू. का माना जाता है।[7]

शुंग काल में भी रामायण कथा प्रचलित थी तथा महर्षि पाणिनी के सूत्र (111. 1.67) का भाष्य करते हुए पातञ्जलि के महाभाष्य में वाल्मीकि रामायण के एक श्लोक के अर्द्धांश को सन्दर्भित किया गया है।[8]

पुराकाल में राम कथा की व्यापकता एवं प्राचीनता का अन्य प्रमाण है, दशरथ जातक, जिसका मूल रूप, जो चार-पाँच श्लोकों को छोड़कर अप्राप्त है, ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी का है और इसका द्वितीय वर्तमान रूप जो चीनी भाषा से अनूदित है, ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का माना जाता है।[9] इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतवर्ष में रामकथा लोकमानस में अपना स्थान बना चुकी थी तथा अन्य सम्प्रदायों ने भी इसका वरण कर लिया था।

महाभारत काल (3138 ई.पू.)[10] में भी लोगों में, सामान्यजन मानस में असन्दिग्ध रूप से रामायणराम कथा को पढ़ने और सुनने की परम्परा रही होगी तभी महाभारत के वन पर्व में, द्रोण पर्व में और शान्ति पर्व में रामकथा की चर्चा है।[11]

वास्तव में राम कथा भारतीय और वृहत्तर भारतीय सभ्यता-संस्कृति का सर्वाधिक व्यापक संकल्प एवं संवेग का स्रोत है। भारोपीय देशों से लेकर सुदूर, मध्य एशिया, तिब्बत, कुश्तन तथा कम्पूचिया आदि देशों में राम कथा के पात्र तथा उनके विषय में जो वर्णन पाए जाते हैं, वह इसकी व्यापकता के उत्स ही नहीं हैं, वरन इस तथ्य को इंगित करते हैं कि यदि यह वाल्मीकि नामक व्यक्ति की कपोल कल्पना होती तो उसका क्षेत्र जम्बू द्वीप-भारत भूमि से लेकर सुदूर-साइबेरिया-रूस तक व्यापक न होता। तब राम कथा की व्यापकता इतने विशाल भू-खण्ड की जातियों, उपजातियों की लोकस्मृति में प्रसारित न हुई होती।

इसी सन्दर्भ में महाभारत में वर्णित 'षोडष-राजिकों' की सूची ध्यातव्य है। इसमें राम का नाम उन सोलह राजाओं में आता है जिन्होंने विपुल संख्या में गोदान कर, यश को अर्जित किया था। इसके अतिरिक्त दो बार राम का उल्लेख महाभारत में उनकी दानशीलता के तथा ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा के लिए किया गया है।[12] ये सभी तथ्य ऐसे हैं जो स्पष्ट रूप से निर्देश करते हैं कि भारत के प्राचीन इतिहास में दशरथ पुत्र राम जो अयोध्या के नरेश थे, एक वास्तविक ऐतिहासिक पुरुष थे तथा वाल्मीकि रामायण की लोकप्रियता के कारण ही क्रमशः श्रीराम में देवत्व का आरोपण होने लगा था और कालान्तर में वे विष्णु के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित हो गए, ठीक उसी प्रकार जैसे उनसे बहुत बाद में उत्पन्न हुए गौतम बुद्ध के साथ हुआ।

मिस्र के शासक अमेनहाटेप तृतीय को लिखे गए एक पत्र में एशिया के मितन्नी वंश के राजा दुषरत्त (दशरथ), जो अनुमानतः ई.पू. 1400 शती में विद्यमान था, ने सूचित किया है कि उसने "अपने कुल देवता रामन् की कृपा से अपने विद्रोही भाई अर्त्तसम अथवा अर्त्तमम को बंदी बनाकर मार डाला।" पकी हुई मिट्टी की मुहर पर लिखा दशरथ (दुषरत्त) का यह पत्र मिस्र के तेल-अल-अमरना नामक स्थल से खुदाई में प्राप्त हुआ था, जिस पर कीलाक्षरी लिपि में यह लेख उत्कीर्ण है।



यहाँ पर ध्यातव्य है कि विद्वानों ने उक्त उल्लिखित देवता 'रामन्' को श्रीराम का किञ्चित परिवर्तित रूप माना है तथा अरबी 'रहमान' शब्द की व्युत्पत्ति रमन, रम्मन, रहमान के माध्यम से संस्कृत रामन् से की है।[13] इस प्रकार यह तथ्य स्पष्ट रूप से पश्चिमी एशिया में राम के देवत्व प्राप्त करने की चर्चा 15वीं शती ई.पू. में करता है। इसी सन्दर्भ में यह उल्लेख करना उचित होगा कि मिस्र के प्राचीन शासकों 'फराओ' के नाम भी राम के नाम पर आधारित होते हैं। उदाहराणार्थ : परमेश रामेशस (Parmessu Ramesess)-I, (1295&1294 ई.पू.) महान रामेशस II (Ramesess-II, The great) (1299-1231 ई.पू.) आदि,[14] जो निश्चित रूपेण मध्य एशिया में राम की महत्ता और उनके 15 शती. ई.पू. के पूर्व देवत्व प्राप्त करने का संकेत करता है। इजरायल के समीपवर्तीरामल्ला=राम +अल्लाह=राम जो ईश्वर है[15], तथा ईरान, अफगानिस्तान के अनेक स्थल आज भी राम के नाम से सम्बन्धित हैं, जिनका विस्तृत विवरण डॉ. अजहर के आलेख में संकलित है।[16] इसी प्रकार दक्षिणी यूरोप-इटली में उत्खनन से प्राप्त साक्ष्य, उस क्षेत्र में राम कथा की लोकप्रियता के प्रमाण हैं[16] तथा अवेस्ता में वर्णित (याश्त 15.49) वायु देवता रमन, जिनका आह्वान युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए किया जाता था, कोई अन्य न होकर श्रीराम ही हैं।[17]

रामायण का स्नायु मंडल पूर्णतः वैदिक है, इसी कारण शतपथ ब्राह्मण का कथन "प्रारम्भ में पृथ्वी का व्यास बित्ते भर ही था। एभूष नामवाले वराह ने उसे ऊपर उठाया।" इसके आगे चर्चा है कि यह वराह ही प्रजापति था और पृथ्वी उसकी प्रिय पत्नी और प्रिय आवास है।[18] इसी तथ्य की अनुगूँज[19] वाल्मीकि रामायण में, उसी प्रकार विद्यमान है जैसे सीता और माया मृग का वर्णन[20] तथा महीयसी नारी कौशल्या का राम के वनगमन के पूर्व अद्भुत स्वतिवाचन।[21] उपर्युक्त तथ्य इस बात का संकेत है कि वाल्मीकि एक वैदिक ऋषि थे तथा वे चौबीसवें परिवर्तन में व्यास थे। ऋक्ष अर्थात् वाल्मीकि के वेद प्रवचन अर्थात् इसके चरण के सन्धि तथा उच्चारण सम्बन्धी तीन नियम भी तैत्तरीय प्राति शाख्य में उल्लेखित हैं जो भाषा शास्त्र के अध्ययन-कर्ताओं को इस प्रकार से उच्चारण करने वाले जनों के वास स्थान का निर्धारण करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। इस तथ्य के भी संकेत हैं कि महर्षि वाल्मीकि दाशरथी राम के समकालीन थे।[22]

पुनः ध्यान देने वाला तथ्य है कि ऋग्वेद में इन्द्र एवं वरुण को राम की भाँति 'असुर', जिसका अर्थ होता है प्राणधर अपरिमित शक्तिशाली, शब्द से सम्बोधित किया गया है।[23] क्योंकि श्रीराम ने एक आदर्श कार्य के लिए वन की यात्रा को स्वीकार किया था तथा उस युग के सर्वाधिक पराक्रमी सर्वसाधन सम्पन्न राजा रावण का वध अत्यन्त सीमित साधनों से कर दिया था। इसी को ध्यान में रखकर ब्राह्मण साहित्य राम को 'राममार्गवेय' (वनयात्रा के कारण प्रसिद्ध राम) कहता है।[24] यहाँ

'रामक्रातुजातेय' विशेषण, जो ब्राह्मण साहित्य में प्रयुक्त हुआ है, क्या राम का कर्मयोग जो ऋत अथवा विधानानुसार सम्पादित हो रहा हो, का द्योतक नहीं है? क्योंकि वास्तव में ब्राह्मण-आरण्यक संस्कृति का काम, क्रतु और ऋतइन्हीं तीन मूल्यों पर प्रतिष्ठित रही है, आधारित रही है।[25] सम्भव है डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे ने इन्हीं और अन्य तथ्यों के आधार पर वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों और उपनिषदों को 4000 ई.पू. से 1000 ई.पू. के काल तक विस्तृत माना है।[26]

परन्तु यह तिथि निर्धारण निर्विवाद नहीं है। आधुनिक ज्योतिष शास्त्र की गणनाएँ वसंतपात को ध्यान में रखकर करने पर आज से दस हजार वर्ष पूर्व के घटनाक्रम का संकेत देती हैं, जैसा गीता का यह श्लोक "मासानाम् मार्गशीर्षोहम्, ऋतु नाम् कुसुमाकरः" भी उसी परमास्मृति को संकेत करता है। कुछ विद्वान इससे भी आगे जाते हैं। ऋग्वेद के दशम मंडल में यह मन्त्र आया है

*सूर्याय वहतुः प्रागानं, सविता यमवासृजत।*
*अघासु हन्यन्ते गावो, अर्जुन्यो पर्युह्यते।*

'सूर्य ने अपनी लड़की सूर्या के विवाह में जो दहेज दिया वह सामग्री आगे चली। गाड़ी के बैलों को अघा (मघा) नक्षत्र में मारना पड़ा। अर्जुनी (फाल्गुनी) में गाड़ी शीघ्रता से चली।"

एक समय सूर्य की दक्षिणायन गति मघा नक्षत्र में समाप्त होती थी, यह बात आज 24 दिसम्बर को मूल नक्षत्र में होती है। मघा नक्षत्र में सूर्य अगस्त मास में होता है। उन दिनों पूर्वा फाल्गुनी से सूर्य शीघ्रता से उत्तरायण चलने लगता था। यह दृगविषय आज से 19 हजार वर्ष पुराना है, जिसका संकेत यह ऋग्वेद का मन्त्र करता है।[27]

वृषाकपि सूक्त[28] भारतीय लोकधर्म की किसी विस्मृत शृंखला की ओर संकेत देता है। जिसका रूपान्तरण नृ-पशु आकृति के देवों (गणपति, नृसिंह तथा हनुमान) में हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि वृषाकपि कोई आदिम आर्य अथवा आर्येतर लोकधर्म का देवता था। इन्द्र के साथ उसकी मैत्री यह संकेत देती है कि वह तत्कालीन देवमण्डल (देखें मन्त्र-1) में प्रवेश पाने हेतु प्रयासरत था। सूक्त में प्रथमतः इन्द्राणी का विरोध इसी तथ्य को दर्शाता है। परन्तु बाद में लोकधर्म के कारण उसे इस समुदाय, देव-समुदाय में स्थान पाने की स्वीकृति प्राप्त हो गई।

हनुमान और वृषाकपि दोनों में अद्‌भुत समानता है क्योंकि वृषा अथवा वृष तथा कपि दोनों की संयुक्ति हनुमान में है।[29] पार्जीटर मूल शब्द हनुमान मानते हैं। हनु का मूल रूप है हाणु जो आणु शब्द में ह जोड़कर बना है। पर श्री कुबेरनाथ राय, इससे सहमत नहीं हैं, वे हनु को जबड़े की हड्डी मानते हैं, ठुड्डी के लिए संस्कृत शब्द चिबुक है। हनुमान का अर्थ मात्र ठुड्डी या जबड़े वाला होता है, वक्र हनुमान का कोई



संकेत इस शब्द में नहीं है। उनके अनुसार हनुमान शब्द का मूल है आणु+माल, जिससे 'ह' जुड़कर हाणुमाल हो जाता है। दक्षिण भारत में माल अथवा मल का अर्थ वीर होता है तथा आणु का अर्थ पुरुष है। इस प्रकार हनुमान वीर पुरुष हैं। दक्षिण में वानर जाति अपने शारीरिक बल के लिए विख्यात थी।[30]

वाल्मीकि रामायण से पता चलता है कि यह जाति समस्त जम्बू द्वीप में व्याप्त थी।[31] वाल्मीकि उनको वानर, कपि, हरि, प्लवंगम, शाखामृग आदि शब्दों से व्यक्त करते हैं। ये कपिगण आरण्यों, पहाड़ियों, कन्दराओं में, गुफाओं में वास करते थेस्पष्ट है वे भवन निर्माण की स्थापत्य कला से अपरिचित थे। ये प्रकृति की सहज सन्तान थे। वे स्वाभाविक रूप से नृत्य, मद्यपान, गीत, पुष्प-शृंगार एवं माल्य रचना में प्रवीण थे तथा इनका परिचय मूल्यवान धातुओं, रत्नों एवं आभूषणों से था। परन्तु साज-सज्जा में यह पुष्प शृंगार को महत्ता देते थे। वे आर्यों की आश्रम संस्कृति एवं विद्या से परिचित थे तथा वृक्षों पर वास करने में समर्थ थे तथा इस प्रकार क्रूर श्वपादों से अपनी सुरक्षा करते थे।

हनुमान की वाग्मिता के कारण श्रीराम अपनी पहली भेंट में उनकी सुसंस्कृत वाग्धारा से प्रभावित हो उठते हैं और कहते हैं"नानृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेदधारिणाः। नासामवेद विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम।[32] जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली, जिसने यर्जुर्वेद का अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान नहीं है, वह इस प्रकार की सुन्दर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरण का कई बार अभ्यास किया हैस्वाध्याय किया है; क्योंकि बहुत-सी बातें बोल जाने के बाद भी इनके मुख से कोई अशुद्धि नहीं निकली।

राम लक्ष्मण से मिलने के पूर्व हनुमान ने अपने कपि रूप में परिवर्तन कर भिक्षु-सामान्य तपस्वी का रूप धारण कर लिया था।[32] स्पष्ट है कि वे रूप बदलने में प्रवीण एवं विवेकवान पुरुष थे। इसी सन्दर्भ में ध्यातव्य है कि रावण द्वारा अपहृत सीता ने ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे सुग्रीव के अनुयायियों को देखकर, अपने कुछ वस्त्र एवं आभूषण गिरा दिए थे, जिसको देखकर श्रीराम उनके अपहरण के मार्ग की दिशा को सुनिश्चित कर सकें।[33] यह तथ्य भी संकेत देता है कि सीता ने मानव रूपों को देखकर अपने वस्त्राभूषण ऋष्यमूक पर्वत पर फेंके थे। इसी भाँति सेतु निर्माण के उपरान्त रावण का आदेश पाकर, उसके दोनों मन्त्रियों, शुक एवं सारंग ने वानर रूप धारण कर, श्रीराम की सेना में गुप्त सूचनाएँ एकत्र करने के लिए प्रवेश किया था।[33]

वैदिक देव परिवार में जिस प्रकार वरुण-पाश धारी हैं उनके हाथ में लिए पाश से निकलने के लिए दुष्कर्मी निवेदन करते थे

*प्रा नो मुञ्च्यंत वरुणस्य पाशाद गोपायंत नः सुमनस्यमाना*[34]

"आप लोग प्रसन्न होकर हमारी रक्षा करें और वरुण के पाश से मुक्ति दिलाएँ; वही पाश इन वानर (नर है अथवा नहीं) वीरों की सुरक्षा की दृष्टि से कटिबंध बन

गया। यह इनकी पुच्छ बन गयाशृंगार का साधन, सुरक्षा का साधन बन गया। जिसके द्वारा इन्हें प्रतिष्ठा मिली, उसी प्रकार जैसे मरुद्गण-गोशृंग को धारण करते थे तथा आज अरुणाचल प्रदेश में, प्रतिष्ठित नागा सरदार सींगों का मुकुट धारण करते हैं। हम सभी अमेरिकन-काऊ व्याज से परिचित हैं और यह भी जानते हैं कि किस प्रकार घोड़े की काठी में लगी रस्सी से वे गायों आदि को फन्दे (पाश) में फँसाकर पकड़ते हैं।

उस युग के वानर वीर अधोभाग में वस्त्र पहनते थे, उस पर अपनी कमर में रस्सी लपेटे रहते थे, जिसका एक सिरा अलंकृत रहता था। इसी 'पुच्छ' का प्रयोग कर यह वीर जाति पेड़ों परवृक्षों पर चढ़ जाती थी तथा शत्रु को इस पाश में लपेट लेती थी। आवश्यकता पड़ने पर यह क्रूर श्वपादों से अपनी रक्षा भी वे, इसी 'पुच्छ' से करने में सक्षम थे। दूसरे शब्दों में मुगलकालीन कमन्द, इसी वानर 'पुच्छ' का एक परिष्कृत रूप था।

वानर गणों के हथियार, अस्त्र-शस्त्र भी आदिम थे। शिला खण्ड, वृक्षखण्ड, काष्ट खण्ड, गदा, मुग्दर आदि का प्रयोग यह जाति कुशलता से करती थी तथा यह मल्ल-विद्या में प्रवीण थी। लोक मानस में अपनी पुच्छ प्रियता के कारण नर-कपिगण पहचाने जाते थे, परन्तु इनकी स्त्रियाँ पुच्छ धारण नहीं करती थीं।

इन वानरों के पुच्छ की अनुगूँज व्यापक थी। यही तथ्य इटली से उत्खननोपरान्त प्राप्त एक पात्र, जो 5वीं शती ई.पू. का है, पर अंकित चित्र से स्पष्ट होता है। इस पात्र पर दो वस्त्रहीन पुच्छ युक्त पुरुष परस्पर संघर्ष की मुद्रा में खड़े हैं तथा इनके बीच खड़ी स्त्री इन्हें न लड़ने के लिए रोकती हुई खचित है। विशेषज्ञों के अनुसार दोनों पुच्छ युक्त पुरुष बालि और सुग्रीव हैं तथा युद्ध रोकने का प्रयास करती महिला तारा है।[35] यह पात्र रोम के 'कैपीटोलान संग्रहालय' में सुरक्षित है। यह पात्र जहाँ राम कथा की व्यापकता योरोप में दर्शाता है, वहीं वानर जाति के पुच्छ प्रेम का भी साक्षी है।

यहाँ पर संकेत करना उचित होगा कि उस युग में वानर नाम की भाँति आर्यों की भी गोत्रसूचक संज्ञाएँ अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों पर आधारित थीं, जैसे वत्स (बछड़ा) शाण्डिल्य (चण्डूल पक्षी) भारद्वाज (नरादुल पक्षी) आदि जो स्पष्ट सूचक हैं, उस युग की भाषा में शब्दों की न्यूनता की अथवा उस युग में पशु-पक्षियों को भी सम्मान देने की प्रवृत्ति की।

वानर महाजाति का विस्तार कितना व्यापक था, इसका अनुमान वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड के सर्ग सैंतीस एवं अड़तीस को पढ़कर लगाया जा सकता है।[36] श्रीराम द्वारा प्रेषित क्रोधातिरेक से पूर्ण लक्ष्मण को सुग्रीव बताते हैं कि रावण की महती चमूम से संग्राम हेतु, हनुमान द्वारा वे समस्त जम्बू द्वीप के वानर वीरों के पास रण-निमन्त्रण भेज रहे हैं। इस अवसर पर सुग्रीव जिन वानर वीरों और उनके



क्षेत्र की चर्चा करते हैं वे हैंहिमालय क्षेत्र, कैलाश प्रतिवेशतिब्बत, धूमगिरि और उदयाचल, सुमेरु (आल्टाई पर्वत शृंखलाआधुनिक रूसी भाषा का बलूखा पर्वत, जिसे वहाँ के वासी आल्टिन भाषा में उच्च-सुमेरु कहते हैं। किम्पुरुष वर्ष (आधुनिक रूसी भू-भाग जो इला वर्ष के दक्षिण का क्षेत्र है।) क्षीरोदा नदी क्षेत्र (साइबेरिया की क्षेत्रज नदी, बेलूखा पर्वत के समीप, इला वर्ष का दक्षिण क्षेत्र)[37] गन्धमादन (कुमायूँ/गढ़वाल क्षेत्र), अरुणाचल (समस्त असम, मेघालयादि क्षेत्र), अस्ताचल (हिन्दूकुशपामीर क्षेत्र), महा अरुणाचल (सुदूर असम का क्षेत्र), विंध्य क्षेत्र, अंजन गिरि क्षेत्र (पश्चिमी घाट का अरण्य क्षेत्र), तमालवन क्षेत्र (केरलीय क्षेत्र) एवं पद्यताल क्षेत्र।

महाकवि ने इन वानर गणपतियों के रंगों का वर्णन अति कुशलता से किया है। कैलाश क्षेत्र से आए वानर यूथ श्वेतवर्ण के, हिमालय-गढ़वाल अंचल के वानरों का रंग केसर पीत था और अरुणाचल प्रदेश के वानरवीर भी इसी वर्ण के थे। हनुमान स्वतः किम्पुरूष वर्ष के होने के कारण आधुनिक रूसियों की भाँति अरुणाभ त्वचा युक्त थे तथा अंजन गिरि वासी जो सेनापति नील के साथ आए थेश्याम वर्णधारी थे। ये सभी वानरगण इच्छानुसार वेशधारी तथा वृक्षों पर चढ़कर कूदकर युद्ध करने की कला में प्रवीण थे। इस महाजाति में, इन आदिम आर्यों के प्रतिनिधियों में, उस युग की प्रथानुसार स्वामी-निष्ठा कूट-कूटकर भरी हुई थीजो आदिम वीर गाथा काल का प्रमुख लक्षण था।

इसका दर्शन सीता अन्वेषण में निकले हनुमान की चिन्ता में स्पष्ट दिखता है। वे शोकाकुल होकर कह उठते हैंतदन्तर स्वामी के दुःख से पीड़ित हुए सारे वानर अपने हाथों और मुक्कों से सिर पीटने लगेंगे। यशस्वी वानरराज ने सान्त्वनापूर्ण वचनों और दयामान से जिनका लालन-पालन किया था, वे वानर अपने-अपने प्राणों का परित्याग कर देंगे। इस कारण मैं किष्किंधापुरी तो नहीं जाऊँगा। मिथिलेश कुमारी सीता को देखे बिना मैं सुग्रीव का भी दर्शन नहीं करूँगा।[38]

हनुमान की भाँति अन्य वानर यूथ पतियों को भी सुग्रीव विभिन्न दिशाओं में, सीता के अन्वेषण हेतु भेजते हैं और विनत नामक वानर यूथपति को वृहत्तर भारत के द्वीपों पर जाने की आज्ञा देते हुए कहते हैं

*यन्तवन्तो यव द्वीप सप्त रज्योपशोभितम।*
*सुवर्ण रूप्यक द्वीपं, सुवर्णकर मंडितम ॥*
*यवद्वीप मतिक्रम्य शिशिरो नाम पर्वतः।*
*दिवं स्पृंशति शृंगेण देव-दानव सेवितः ॥*[39]

"तुम लोग सात राज्यों से सुशोभित यव द्वीप, जावा, सुवर्णद्वीपसुमात्रा तथा रूप्यक द्वीप में यत्नशील होकर जाना तथा सुवर्ण खानों से युक्त इस द्वीप में (सीता को) ढूँढ़ने का प्रयास करना। यवद्वीप को लाँघकर आगे जाने पर एक शिशिर नामक

पर्वत मिलेगा, जिसके ऊपर देवता एवं दानव निवास करते हैं तथा अपने उच्च शिखर से यह पर्वत स्वर्ग को स्पर्श करने लगता है।[39]

विद्वानों का मत है कि वह सातवाहन युग था जब रामायण का यह नव संस्करण हुआ था, क्योंकि इस युग में इन द्वीपों से भारतीयों का सामुद्रिक व्यापारिक सम्बन्ध था।[40] इस सम्बन्ध का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है कि शिशिर पर्वत के उल्लेख ने, जो आधुनिक न्यू गिनी में स्थित है, इस द्वीप के डचों से मुक्ति दिलाई तथा यह इंडोनेशिया का भाग मान लिया गया। रामायण के इस प्रमाण ने डच लोगों से (हालैण्ड वासियों से) इस द्वीप के वासियों को स्वतन्त्रता प्रदान करा दी।[40]

गम्भीरता से विचार करने पर उदात्तता एवं गरिमा की दृष्टि से रामकथा भारतीय मनीषा का एक विमिश्रित उत्पादन है। आर्यों की दो धाराओं, आदिम और नव्य आर्यों की संघर्ष गाथा है। प्रजापति और अग्नि का उपासक रावण-आदिम आर्यत्व-मातृकुल सत्ता का प्रतिनिधि है और रामचन्द्र वैदिक संस्कृति के पोषक-नव्य आर्यत्व के, किरात, निषाद, द्रविड़ के संयुक्त दीक्षित आर्यत्व के प्रतिनिधि हैं, जिसके बिम्ब रामकाव्यवाल्मीकि रामायण को उपजीव्य मानकर रामायण के विभिन्न संस्करणों में विद्यमान हैं। इनमें संस्कृत का अध्यात्म रामायण, अद्‌भुत रामायण, महारामायण, बंगला में कृतिदास रामायण, मराठी में श्रीराम विजय, असमिया में माधव कन्दली रामायण, उड़िया का वैदेहीश विलासमू, नेपाली का भानुभक्त रामायण, गुजराती का गिरधर रामायण, तेलुगू में विरचित रंगनाथ रामायण एवं बहुश्रुत हिन्दी का रामचरितमानस, प्रमुख हैं। इन समस्त राम काव्यों की उभयनिष्ठ मान्यता रही है कि श्रीराम ने लंकाधिपति राक्षसेन्द्र रावण के विरुद्ध सैन्य अभियान के पूर्व, दक्षिणी समुद्र तट पर पहुँचकर तीन दिनों तक समुद्र से मार्ग प्राप्त करने की प्रतीक्षा की।[42] तदुपरान्त, उन्होंने समुद्र को सोख लेने हेतु अपने धनुष पर ब्रह्मास्त्र का संधान किया।[42] इस बिन्दु पर उस समय के समुद्रीय भू-गर्भीय हलचलों पर कुछ टिप्पणी करना समीचीन होगा।

समुद्र लंघन के प्रथम चरण में हनुमान के भार से पीड़ित होकर महेन्द्र गिरि डगमग कर उठा, उससे सुनहरे और काले (लौह गंधक युक्त) जल स्रोत फूट निकले तथा उसके शिलाखण्ड गिरने लगे थे। इसी प्रकार सुन्दरकाण्ड के प्रथम सर्ग श्लोक 84 में हनुमानजी मैनाक को ऊपर, समुद्रतल से ऊपर उठने की आज्ञा देते हैं, इसके अनुपालन में समुद्रतल में छिपे मैनाक पर्वत ने दो घड़ी में हनुमानजी को 'दर्शयामास शृङ्गाणि सागरेण नियोजितः" अपने शिखरों का दर्शन कराया।[44]

इन वर्णनों से समुद्रतल में उस समय हो रहे भू-गर्भीय परिवर्तनों के टेक्टानिक एक्टीविटी के दर्शन होते हैं तथा इन्हीं के फलस्वरूप समुद्र में टापुओं का, पर्वत शिखरों का निकल आनाउस युग को देखते हुए आश्चर्यजनक नहीं लगता।



स्वतः ऋग्वेद में भी धरा पर, आज से 20-25 सहस्त्र वर्ष पूर्व हो रहे भू-गर्भीय परिवर्तनों के प्रमाण हैं। हिमालय उन दिनों जलमग्न था तथा विन्ध्यपर्वत उत्तुंग था। भू-गर्भ की प्लेटों के उत्तर की ओर खिसकने से, कालान्तर में हिमालय का जन्म हुआ। टेथिस सागर सूख गया और उसकी स्मृति में आज राजस्थान में मात्र सांभर झील बची है। उस समय प्रचुरता से भूकम्प आते थे, पर्वत उत्पन्न होते थे और अदृश्य हो जाते थे। क्रमशः यह स्थिति बदली, भूमि दृढ़ हुई और पर्वत स्थिर हो गए।[45] इसी तथ्य की ओर ऋग्वेद का निम्न मन्त्र संकेत करता है

*यः पृथ्वी व्ययमना मद्दृहद्‌य पर्वतीय प्रकुपितां नरम्णात।*
या
*अन्तरिक्ष विमसे वरीयो यो दयामस्तनातस जनास इन्द्रः ॥*[46]

"हे लोगों! जिसने हिलती-डुलती-व्यथित पृथ्वी को दृढ़ किया, जिसने कुपित चंचल क्षुब्ध पर्वतों को शान्त किया, जिसने अंतरिक्ष को फैलाया-विस्तार किया, जिसने द्‌युलोक आकाश को स्थिर किया, वह इन्द्र है।"

समुद्र तल में उत्पन्न हलचलों, विस्फोटों के फलस्वरूप जो तरंगें, उत्ताल-सुनामी तरंग अभी हाल में उत्पन्न हुई थीं, उनकी विनाश लीला से हम भली-भाँति परिचित हैं। इन्हीं तरंगों के ताण्डव से श्रीकृष्ण की द्वारिका जलमग्न हुई थी[47] तथा तमिल साहित्य में चर्चित जिस कावेरी पट्‌टणम् नगर की चर्चा यूनानी इतिहासकारों, यथा टोलमी तथा प्लीनी ने की है; वह भी इन्हीं सुनामी तरंगों के आघात के परिणामस्वरूप जलमग्न हो गया था। इसके समुद्र तल से उत्खनन का प्रयास महाबलीपुरम् की ही भाँति चल रहा है।[47]

हम सभी ज्वार-भाटा जो समुद्र में सामान्यतः आते रहते हैं, से परिचित हैं। वाल्मीकि रामायण में वर्णित राम के ब्रह्मास्त्रसंधान का समुद्र के सन्दर्भ में वर्णन, सम्भवतः इसी घटना क्रम का संकेत देता है। समुद्र के जल स्तर के घटने के परिणाम स्वरूप ही समुद्र के उन उथले भागों पर, जो श्रीलंका को भारत भूमि से जोड़ते थे, कुशल शिल्पी नल द्वारा सेतु निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया गया हो।[48]

मद्रास गजेटियर के अनुसार 15वीं शती के आसपास रामेश्वरम् तथा पूर्वोत्तर लंका की मन्नार खाड़ी को जोड़नेवाला यह नल सेतु, यातायात के काम आता था।[49]

भू-गर्भ शास्त्रियों एवं पुरातत्त्वविदों के अनुसार यह संरचना-सेतु, चूने के पत्थरों और ढूहों-शेलाक की एक दृढ़ शृंखला है, जो पश्चिम तट श्रीलंका के सन्निकट मन्नार की द्वीप शृंखला तथा रामेश्वरम् के मध्य 48 किलोमीटर की लम्बाई में फैली है। यह मन्नार की खाड़ी के दक्षिण पश्चिमी भाग को पलाक-स्ट्रेट के उत्तरी छोर से पृथक् करती है। समुद्र इस समूचे भाग में उथला है, कहीं पर तीन तो कहीं पर बीस फीट।[48]

एक मान्यता के अनुसार ईसा से अनुमानतः छह हजार वर्ष पहले इस समुद्री क्षेत्र में एक समुद्री पगदण्डी के रूप में एक जल संयोजक (Isthamus) हुआ करता

था जो समुद्र से ऊपर था तथा नैसर्गिक रूप में दक्षिण भारत को श्रीलंका से जोड़ता था[49], जिसके द्वारा मानव सहजता से आ जा सकता था। यह भी सम्भव है कि रामायण काल में यह मार्ग कहीं पर कटा-या टूट गया हो, जिसको शिल्पी नील ने जोड़ा हो तथा इसी के फलस्वरूप श्रीराम सेना सहित लंका में पहुँचे हों।

अमेरिका के नेशनल एयरोनॉटिक्स एण्ड स्पेस एजेन्सी-नासा के उपग्रह से प्राप्त चित्र 'इसी प्रकार की संरचना' का समर्थन करते हुए, इस सेतु की प्राचीनता अनुमानतः 19 लाख वर्षों की होने की सूचना देते हैं।[48]

रावण वध कर, सीता एवं लक्ष्मण तथा वानरों सहित श्रीराम पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर सेतु को देखकर सीता से कहते हैं

*एष सेतुर्मया बद्ध सागरे लवणार्णवे।*
*तव हेतोविशालाक्षी नल सेतु सुदुष्करः।*[50]

वास्तव में कुशल शिल्पी नल द्वारा निर्मित यह सेतु, राम के लंका अभियान, रावण संहार तथा उससे संबद्ध प्रसंगों को पुनर्जीवित ही नहीं करता, वरन प्रमाणित भी करता है।

## सन्दर्भ सूची


1. याकोबी, हर्मन, दास रामायण, अंग्रेजी अनुवाद : डॉ. घोषाल एस.एन, ओरियंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, 1960.
2. चतुविंशत्सहस्त्राणि श्लोका नामुक्तवानृषिः।
   तथा
   सर्गरातान पञ्च षट काण्डानि तथोत्तरम् ॥
   श्रीमद्वाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर, द्वितीय संस्करण सं. 2025, पृ. 36।
3. बनर्जी पी., राम एन इण्डियन लिटरेचर आर्ट एण्ड थाट, दिल्ली 1986, पृ. 4 तथा वर्मा, टी.पी., श्रीराम और उनका युग, भारतीय इतिहास संकलन समिति, उत्तर प्रदेश, 1993, पृ. 6।
4. काव्यं रामायणं कृत्स्न सीतायाश्चरित्रं महत।
   पौलत्स्य बधमित्यवे चकार चरितव्रत ॥1.4.7
5. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्डे, प्रथम सर्ग : 29-36, पृ. 38-39।
6. उदार वृत्तार्थ पदैर्मनोरमैस्तादास्य रामास्य चकार कीर्तिमान्।
   समाक्षरैः श्लोक शतैर्यशास्विनों यशस्करः काव्यमुदारनदर्शनः ॥ 1.2.42
7. वर्मा, ठा.प्र., श्रीराम और उनका युग, भारतीय इतिहास संकलन समिति, उत्तर प्रदेश, 1993, पृ. 7 तथा बनर्जी, पी, राम इन इण्डियन लिटरेचर, आर्ट एण्ड थाट, दिल्ली 1986, खण्ड दो, चित्र 110.





8. राय, कुवेर नाथ, रामायण, महातीर्थम, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण, 2002, पृ. 39.
9. वर्मा, ठा.प्र., द साइंस ऑफ मनवन्तराज, बाबा साहेब आ. स्मारक समिति, बंगलुरू 2006, पृ. 30.
10. महाभारत, वनपर्व, द्रोणापर्व एवं शान्ति पर्व, गीताप्रेस, गोरखपुर, अध्याय274-291, पृ. 1915-1990, अध्याय 59, पृ. 3256-59, अध्याय 29, पृ. 51-61.
11. वर्मा, ठा.प्र., श्रीराम और उनका युग, भारतीय इतिहास संकलन समिति, उ.प्र., 1993, पृ. 10.
12. पुरातत्व खण्ड 8, पृ. 148 तथा वर्मा, ठा. प्र., श्रीराम और उनका युग, 1993, पृ. 15.
13. अग्रवाल, गुंजन, : प्रागैस्लामिक अरब में हिन्दू-संस्कृति, इतिहास दर्पण, अंक 15 विजयादशमी, 2010, पृ. 44.
14. लेखक ने इजरायल प्रवास काल में यह क्षेत्र देखा था।
15. अजहर, ए. डब्ल्यू; फारसी में रामकथा, श्रेय खण्ड 1, भाग 1.1982.
16. जे.ओर आर. आई. बड़ौदा, खण्ड 21, 1972, 73, पृ. 210-16 तथा फलक 1-10.
17. याकोवी, हरमन, पूर्वोक्त, पृ. 101-102.
18. शतपथ ब्राह्मण; "इयतहिवा इयमग्रे पृथ्वी व्यास प्रदेशमात्री, तामेभूष इति वराह उज्जधान... ।"
19. सार्व सलिलमेवासीत पृथ्वी तत्र निर्मितं।
   ततः समभवद ब्राह्म स्वयंभू दैवत सहा ॥
   स वराहस्ताते भृत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम।
   अ सृजच्च जगतसर्व सह पुत्रैः कृतात्मभिः ॥ वा. रामायण 2/110/3-4
20. अर्वाची सुभगे सीते वन्देमहेत्वा। यथा नः सुभाससि यथा न, सुफला ससि ॥ ऋग्वेद 4.57.6.
   तथाइन्द्रः सीतां निगृहनातु तां पूषानुंयच्छतु सानः पयस्वी दुहा मुत्तरामुत्तरां समांम ॥ ऋग्वेद 4.57.7 तथा देखें अथर्ववेद, कौशिक सूत्र, एवं श्री सूक्त'हिरण्यवर्ग हरिणीं सुवर्ण रजत सास्ताज। चन्द्रां हिरण्यमी लक्ष्मी जात वेदो आवाह ॥"
21. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, पंचविंशः सर्ग, 1-49.
22. भगवद दत्त, पं., वैदिक वाङ्मय का इतिहास, विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्ददिल्ली, संस्करण 2008, प्रथम भाग, पृ. 104, 103.
23. ऋग्वेद, 10.93.14.
24. वर्मा, ठा.प्र., श्रीराम और उनका युग, भारतीय इतिहास संकलन समिति, उ.प्र., 1993, पृ. 11.
25. देखें सन्दर्भ 8, पृ. 136-153.

26. पी.वी.काणे, डॉ. हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूणा भाग-3, क्रोनोलॉजिकल टेबल XVIII, 1973.
27. सम्पूर्णानन्द, डॉ., हिन्दू देव परिवार का विकास, मित्र प्रकाशन प्रा.लि., इलाहाबाद, 1964, पृ. 41.
28. ऋग्वेद 10,86.
29. पर्जिटर, एफ.ई. एशियंट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन एवं वर्मा, ठा.प्र., श्रीराम और उनका युग, पृ. 47.
30. देखें सन्दर्भ 8, पृ. 198.
31. ते गतिज्ञा गति गत्वा पृथिव्यां सर्ववानराः।
आनयन्तु हरीन सर्वांस्तवरितः शासनान्मम ॥ वा.रा. अरण्यकाण्ड, सप्तत्रिंश सर्ग 15. पृ. 781.
32. वाल्मीकि रामायण। किष्किन्धाकाण्ड, तृतीय सर्ग, 289, पृ. 681, पृ. 680, 2.
33. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सप्तम सर्ग, 16-22, पृ. 688 एवं युद्धकाण्ड, पंचविशः सर्ग, 9 पृ. 265
34. ऋग्वेद, 6.75, 4.
35. आप्टे, बी.एस.; संस्कृत हिन्दी कोष, 1977 दिल्ली, पृ. 855.
36. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सप्तत्रिंशः एवं अष्टत्रिशः सर्ग, पृ. 780-785।
37. उपाध्याय राजीवरंजन, विश्वात्मा सर्व शैलोत्तमोत्तम-मेरु, चिन्तन-सृजन, वर्ष 4, अंक 4, अप्रैल-जून 2007, पृ. 85.
रूस के साइबेरिया की आल्टिन भाषा में उच्चारित इस उच्च-सुमेरु-बेलूखा पर्वत को आज भी कज्जाकिस्तान और समीपवर्ती क्षेत्र के वासी पूज्य मानते हैं तथा यहाँ से चारों समुद्र समान दूरी पर हैं। यही मेरु, न कि पामीर पर्वत शृंखला मानव सभ्यता का आदि केन्द्र है, 'नाभा-पृथिव्या' है।
38. वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकाण्ड, त्रयोदश सर्ग, 32-38, पृ. 50.
39. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, चत्वारिशं सर्ग : 30, 31. पृ. 790.
40. अवस्थी, अवध बिहारी लाल, प्राचीन भारतीय भूगोल, कैलाश प्रकाशन, 76 खुर्शेदबाग, लखनऊ-4, 1972, पृ. 219.
41. सिंह, सत्यपाल, मर्यादा पुरुषोत्तम राम की ऐतिहासिकता, परोपकारी, अगस्त, 2008, पृ. 271-275.
42. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, एकविंशः सर्ग, 11-12, पृ. 252.
43. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, द्विविंश : सर्ग, 5-16, पृ. 254.
44. वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकाण्ड, प्रथम सर्ग, 103 पृ. 7.
45. सम्पूर्णानन्द, डॉ. हिन्दू देव परिवार का विकास, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लि., इलाहाबाद, 1964, पृ. 44.
46. ऋग्वेद, 2, 12, 2.
47. टाइम्स ऑफ इण्डिया, 24 जुलाई, 2010.



48. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, द्विविंश : सर्ग, 45, पृ. 257.
49. मिश्र, अरविन्द, डॉ., विवादों के घेरे में सेतुसमुद्रम् परियोजना, विज्ञान प्रगति, जून 2007, पृ. 292.
50. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, त्रयोविंशः व्यधिशनतम् सर्ग, 16, पृ. 574.

## चिन्तन-सृजन का स्वामित्व सम्बन्धी विवरण

### फार्म 4

### नियम 8

| | | |
|---|---|---|
| 1. प्रकाशन स्थान | : | दिल्ली |
| 2. प्रकाशन अवधि | : | त्रैमासिक |
| 3. स्वामी | | आस्था भारती, नई दिल्ली |
| 4. मुद्रक | : | डॉ. बी. बी. कुमार<br>सचिव, आस्था भारती |
| (क्या भारत के निवासी हैं?) | | हाँ, भारतीय |
| पता | | 27/201, ईस्ट एण्ड अपार्टमेण्ट<br>मयूर विहार फेस-1 विस्तार<br>दिल्ली-110096 |
| 5. प्रकाशक | : | डॉ. बी. बी. कुमार<br>सचिव, आस्था भारती |
| (क्या भारत के निवासी हैं?) | | हाँ, भारतीय |
| पता | | 27/201, ईस्ट एण्ड अपार्टमेण्ट<br>मयूर विहार फेस-1 विस्तार<br>दिल्ली-110096 |
| 6. सम्पादक | : | डॉ. बी. बी. कुमार<br>सचिव, आस्था भारती |
| (क्या भारत के निवासी हैं?) | | हाँ, भारतीय |
| पता | | 27/201, ईस्ट एण्ड अपार्टमेण्ट<br>मयूर विहार फेस-1 विस्तार<br>दिल्ली-110096 |

मैं डॉ. बी. बी. कुमार घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

(ह.) डॉ. बी. बी. कुमार

25.5.2011 प्रकाशक

# आर्य-द्रविड़ परिवार की भाषाओं के काल्पनिक सिद्धान्त पर पुनर्विचार

**परमानन्द पांचाल***

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निरन्तर यह भ्रम फैलाने का प्रयत्न किया जाता रहा है कि आर्य भारत में बाहर से आक्रामक के रूप में आए और उन्होंने यहाँ के मूल निवासी द्रविड़ों को उत्तर से भगा दिया, जो आज दक्षिण में रह रहे हैं। इस मिथ्या प्रचार का दुष्परिणाम निकलाभारत का उत्तर और दक्षिण के रूप में आनुवंशिक आधार पर विभाजन और परस्पर जातीय वैमनस्य। ब्रिटिश साम्राज्य को अपनी जड़ें मजबूत करने में इस सिद्धान्त से अपेक्षित सहायता भी मिली। हमारे इतिहासकारों और भाषा वैज्ञानिकों ने शिक्षा के क्षेत्र में इसका प्रचार किया। परिणामतः उत्तर और दक्षिण के बीच जातीय आधार पर जो खाई उत्पन्न हुई, उसके घातक परिणाम सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी देखने को मिले। सभी जानते हैं कि एक प्रान्त का नाम तो मात्र प्रजातीय आधार पर ही रखा गया। यही नहीं, एक दो राजनैतिक दलों का गठन भी द्रविड़ शब्द को आधार मानकर किया गया, जिसकी पृष्ठभूमि में स्पष्ट रूप से जातीय पृथकता की गन्ध आती है। वैसे देखा जाए तो श्रीलंका के लम्बे जातीय संघर्ष के पीछे भी यही तत्त्व विद्यमान रहा है।

प्रसन्नता का विषय है कि हार्वर्ड विश्वविद्यालय और भारतीय शोधार्थियों के एक दल ने अपने एक नवीनतम अध्ययन के आधार पर अब यह मत प्रकट किया है कि आर्य और द्रविड़ विभाजन महज एक कल्पना है। इससे प्रमाणित हुआ कि सदियों से चली आ रही यह मान्यता कि उत्तर भारतीय लोग आर्य हैं और दक्षिण भारतीय द्रविड़ जाति के हैं, एक कपोल कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। कोशिकीय तथा आणविक जीव विज्ञान केन्द्र (सेन्टर फॉर सेल्यूलर एण्ड मॉलिक्यूलर बायोलॉजी) अर्थात् सी.सी.एम.बी. ने इस अध्ययन को हार्वर्ड मेडिकल स्कूल ऑफश

* डॉ. परमानन्द पांचाल, 232, ए पॉकेट, फेज-1 मयूर विहार, दिल्ली110091



पब्लिक हेल्थ ब्रॉड इंस्टिट्यूट ऑफ हार्वर्ड एम.आई.टी. के सहयोग से अंजाम दिया है। इस अध्ययन के परिणामों ने इतिहास को एक नया मोड़ दे दिया है। इसके अनुसार सभी भारतीय आनुवंशिक रूप से जुड़े हुए हैं। सभी भारतीय एक हैं। उत्तर और दक्षिण भारतीयों के पुरखों का जिनेटिक अंश एक है। सी.सी.एम.बी. के वरिष्ठ वैज्ञानिक के. तंगराज कहते हैं कि "आर्य द्रविड़ सिद्धान्त में जरा भी सच्चाई नहीं है।"

यह सिद्धान्त उत्तर भारतीयों और दक्षिण भारतीयों के अपनी-अपनी जगह जम जाने के सैकड़ों वर्ष बाद आया। इतिहास की सच्चाई में एक नया मोड़ देने वाले इस अध्ययन के 'को-ऑथर' और सी.सी.एम.बी. के पूर्व निदेशक श्री लालजी सिंह का कहना है कि यह शोध-पत्र इतिहास को नए सिरे से लिखेगा। इस अध्ययन के अनुसार 65,000 वर्ष पहले दक्षिण भारत और अंडमान में बस्तियाँ वजूद में आईं और उसके 25,000 वर्ष बाद उत्तर भारत आबाद होने लगा। धीरे-धीरे उतर और दक्षिण भारतीयों का मिलन हुआ और एक मिश्रित पैदाइश ने आकार ले लिया। इस प्रकार दक्षिण और उतर भारतीय लोग आनुवंशिकी दृष्टि से परस्पर सम्बद्ध और एक हैं। इससे पूर्व भी विद्वानों ने आर्य और द्रविड़ विभाजन के सिद्धान्त का पूर्णतः खण्डन किया है। सरस्वती नदी, जो 2,000 ई. पूर्व में सूख गई थी, के अवशेषों की खोज ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि सरस्वती घाटी की सभ्यता हजारों वर्ष ई. पूर्व की एक विकसित सभ्यता थी। ऋग्वेद की ऋचाओं में सरस्वती नदी का बहुलता से गुणगान है, जो हिमालय से निकलकर अरब सागर में मिलती थी। वास्तव में सिन्धु और सरस्वती घाटी की सभ्यताएँ इसके प्रमाण हैं कि हड़प्पा सभ्यता जो सिन्धु से राजस्थान, हरियाणा और उत्तर प्रदेश तक फैली थी, वह एक ही सभ्यता के विभिन्न रूप थे। अब सिन्धु घाटी सभ्यता के चिह्न सुदूर केरल के एडक्कल की गुफाओं में भी पाए गए हैं जो 23,000 और 1,700 ई. पूर्व के हैं। यही नहीं कर्नाटक और तमिलनाडु में भी ऐसे अवशेष मिले हैं, जो सिन्धु घाटी सभ्यता जैसे हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार एम.आर. राघव वेरियर के अनुसार एडक्कल गुफाओं में प्राप्त 'घड़ा' सिंधु सभ्यता के अवशेषों से बिलकुल मिलता-जुलता है। सिन्धु लिपि के चिह्नों की यहाँ विद्यमानता सिद्ध करती है कि प्रागैतिहासिक काल में यहाँ समान सभ्यताएँ विकसित थीं। फिर आर्यों का बाहर से आने का सिद्धान्त और आर्य द्रविड़ विभाजन पूर्णतः काल्पनिक और सोद्देश्य मात्र रह जाता है।

हाल के हार्वर्ड में हुए इस अध्ययन से स्वतः ही आर्य और द्रविड़ परिवार की भाषाओं का मिथक भी ध्वस्त हो जाता है। जब आर्य और द्रविड़ का विभाजन ही काल्पनिक है तो आर्य और द्रविड़ नाम के भाषाई परिवारों की कल्पना भी कपोल कल्पित होने के सिवा कुछ नहीं है। आर्य और द्रविड़ परिवार की भाषाओं के सिद्धान्त ने भारत में एक भाषाई वैमनस्य और उन्माद को जन्म दिया, जिसका लाभ

साम्राज्यवादी शक्तियों ने उठाया और भारतीय अस्मिता को धूमिल करने में सहायता की। भारतीय भाषाओं के बीच जो दरार पैदा की गई उसको भरना आसान नहीं है। राष्ट्रीय एकता के लिए महात्मा गांधी और देश के अन्य अग्रणी नेताओं ने राष्ट्रभाषा के रूप में जिस भाषा की पहचान की थी, उसको सिरे ही नहीं चढ़ने दिया गया। उसके मार्ग में प्रमुख अवरोध का कारण भी यह सिद्धान्त ही बना कि हिन्दी आर्य परिवार की भाषा है। यही नहीं, आर्य और द्रविड़ परिवार के इस काल्पनिक विभाजन का विष-वमन यहाँ तक हुआ कि भाषाई शुद्धता के नाम पर तमिल भाषा से संस्कृत शब्दों को चुन-चुनकर निकालने का प्रयास भी किया गया। अगर मैं यह कहूँ कि शुद्धता के नाम पर भारत की इस प्राचीन और समृद्ध भाषा तमिल के स्वाभाविक और प्रभावी प्रवाह को रोकने का भी एक कृत्रिम प्रयत्न किया गया, तो कोई अत्युक्ति न होगी, क्योंकि भाषा तो बहता नीर है।

जैसा कि पहले कहा गया है कि आर्य कोई जाति नहीं थी। 'आर्य' और 'द्रविड़' नाम से जातियों की कल्पना महज एक मिथक है। 'आर्य' का अर्थ हैश्रेष्ठ, आदरणीय, योग्य आदि। (शिवराम बामन आप्टे का संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 159) ऋग्वेद का एक मंत्र है"इन्द्र वर्द्धतु अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अपध्नन्तो अरावणः" अर्थात्हम सज्जनों की वृद्धि का प्रयास करें और विश्व को आर्य (श्रेष्ठ) बनाते चलें और दुष्टों का नाश करते चलें।

इसमें विश्व को आर्य (श्रेष्ठ) बनाने का आह्वान है, जाति का नहीं। क्योंकि किसी जाति (रेस) को कैसे बनाया जा सकता है? उसे तो श्रेष्ठ ही बनाया जा सकता है। स्पष्ट है कि आर्य कोई जाति नहीं थी और न वह भारत में बाहर से आई थी। आर्य को एक जाति (रेस) के रूप में स्थापित करने वाले ए.एफ. आर. हर्नले ने *कम्पैरेटिव ग्रामर ऑफ गौडियन लैंग्वेज* में यहाँ तक लिखा है कि भारत में आर्य कम से कम दो बार में आए। इसी प्रकार कई भाषाविज्ञानियों और इतिहासकारों ने भी आर्यों को आक्रामक के रूप में बाहर से आनेवाला बताया है। यह सत्य है कि भारतीयों का सम्बन्ध प्राचीन काल से ही मध्य एशिया और यूरोपीय देशों से रहा है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि यहाँ आर्य नाम से कोई जाति बाहर से आई थी। इसका कहीं भी कोई प्रमाण नहीं मिलता।

बिशप रावर्ड कॉल्डवैल (1814-1841) ने *दि कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ द्रविडियन लैंग्वेजेज* (1856) में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की सुदृढ़ता के लिए अपना सिद्धान्त रखा था, जो राजनैतिक, शैक्षिक और नवजागरणवाद (Revivalism) के उद्देश्यों पर आधारित था, जिसने 20वीं शती में द्रविड़ियन राष्ट्रवाद का प्रचार किया। इसने निश्चय ही भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को धीमा करने में सहायता की। कॉल्डवैल तत्कालीन यूरोप के वैज्ञानिक जातीय सिद्धान्त से प्रभावित था। इसलिए उसने



आर्य-द्रविड़ विभाजन सिद्धान्त को हवा दी। द्रविड़ भाषाएँ नाम की उत्पत्ति उसी की देन है। चार्ल्स ई. गोवर तथा डी.पी. शिवराम (1871) ने कॉल्डवैल की मान्यताओं का प्रतिवाद किया और उन्हें निराधार बताया।

यदि हम लिपि की दृष्टि से देखें तो भारत की सभी प्रमुख भाषाओं की लिपियों का उद्गम एक ही लिपि ब्राह्मी लिपि रही है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक की सभी भाषाओं की लिपियाँ ब्राह्मी की वंशज हैं। यदि जातीय आधार पर आर्य और द्रविड़ परिवार की भाषाएँ अलग हैं, तो द्रविड़ परिवार की भाषाओं की लिपियों का उद्गम भी कुछ न कुछ अलग होना चाहिए था, जो नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि ब्राह्मी और कालान्तर में देवनागरी लिपि का प्रचलन भी सर्वप्रथम दक्षिण में ही हुआ था। भाषाविद् श्रीनिवास रिती की दृष्टि में अशोक पूर्व ब्राह्मी धुर दक्षिण में उत्पन्न हुई थी और आन्ध्र प्रदेश होते हुए उत्तर में गई। भट्टिपोलु लेख को वे अशोक काल के पूर्व के लेख का उदाहरण मानते हैं। (देखिए जर्नल ऑफ इपिग्राफिकल सोसाइटी ऑफ इण्डिया, जिल्द 19, 1993) सौदाराजन भारत में लेखन कला को बहुत पूर्व का मानते हैं और ब्राह्मी के सूत्र को सिन्धु घाटी की लिपि में देखते हैं। प्रारम्भिक ब्राह्मी अभिलेख पांड्य प्रदेश की राजधानी मुदरा में प्रचुर संख्या में मिले हैं। अतः लिपि के आधार पर भी आर्य-द्रविड़ पृथकता का सिद्धान्त खरा नहीं उतरता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साम्राज्यवाद के हित में ब्रिटिश इतिहासकारों और भाषा वैज्ञानिकों ने देश को विभाजित रखने और यहाँ के लोगों को जातीय और भाषाई आधार पर बाँटे रखने के लिए जो प्रयास किए थे, आज उन पर पुनर्विचार करने की परम आवश्यकता है।

# ईस्ट इण्डिया कम्पनी शासन काल में देवनागरी लिपि : स्थिति और विश्लेषण

**रामनिरंजन परिमलेन्दु***

पलासी (23 जून, 1757 ई.) बक्सर युद्ध एवं (23 अक्टूबर, 1764 ई.) में अंग्रेजों की विजय के बाद शाह आलम द्वितीय ने 12 अगस्त, 1765 ई. को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी ईस्ट इण्डिया कम्पनी को समर्पित कर दी।[1] फिर नवम्बर 1858 ई. को लार्ड कैनिंग की घोषणा के अनुसार भारत में तात्कालिक प्रभाव से महारानी एलेक्जेंड्रिना विक्टोरिया (जन्म 24 मई, 1819 ई., राज्य प्राप्ति 28 जून, 1838 ई., निधन 22 जनवरी, 1901 ई.) का शासनारम्भ हुआ। अर्थात् 1757 ई. से 31 अक्टूबर, 1858 ई. तक का शासनकाल भारत का ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन काल है।[2]

सन् 1788 ई. में एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता (स्थापना तिथि 15 जनवरी, 1784 ई.) के तत्वाधान में सोसायटी के संस्थापक और प्रथम अध्यक्ष सर विलियम जोन्स[3] (सन् 1746 ई.27 अप्रैल, 1794 ई.) द्वारा लिखित *ए डिस्सर्टेशन आन दि आर्थोग्राफी ऑफ एशियाटिक वर्ड्स इन रोमन लेटर्स'* (A Dissertation on the Orthography of Asiatick Words in Roman Letters) शीर्षक विनिबंध से ही देवनागरी लिपि आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। यह वस्तुतः 'एशियाटिक रिसर्चेज' के प्रथम खण्ड का प्रथम लेख है। इस लेख में सर विलियम जोन्स ने देवनागरी लिपि की स्वाभाविक व्यवस्था को अन्य लिपियों की अपेक्षा सर्वाधिक श्रेष्ठ घोषित किया। किन्तु सम्पूर्ण एशियाई भाषाओं के लिए अनिवार्य स्वरलिपियों से युक्त संशोधित रोमन लिपि को ही एकमात्र लिपि के रूप में उन्होंने मान्यता दी। वे रोमन लिपि की अपूर्णताओं और त्रुटियों से परिचित थे। रोमन लिपि भारतीय, फारसी और अरबी

* पूर्व यूनिवर्सिटी प्रोफेसर (हिन्दी), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर; पता : दक्षिण दरवाजा, गया-823001, फो. 0631-2237318; 2222347



शब्दों को पूर्णतया व्यक्त करने में अक्षम है। अतएव, उन्होंने रोमन लिपि को अनिवार्य स्वर लिपियों से युक्त करने की अनुशंसा की।[4]

इस तरह रोमन लिपि की अपूर्णता, असमर्थता और देवनागरी लिपि की संक्षिप्तता और स्वच्छता से परिचित होने के बावजूद देवनागरी लिपि के स्थान पर संशोधित रोमन लिपि को सम्पूर्ण एशियाई भाषाओं की एकमात्र लिपि का गौरव प्रदान करने का अनुचित प्रयास सर्वप्रथम सर विलियम जोन्स ने 1788 ई. में किया था।

*ए डिस्सर्टेशन आन दि आर्थोग्राफी ऑफ एशियाटिक वर्ड्स इन रोमन लेटर्स* ही लिपि-आन्दोलन की गंगोत्री है। यह सर्वभाषाओं की एकलिपि की सर्वप्रथम योजना एवं परिकल्पना है। यह भारत ही नहीं एशिया में लिपि आन्दोलन का सर्वप्रथम सूत्र है। सम्पूर्ण एशियाई भाषाओं को एक लिपि तथाकथित संशोधित रोमन लिपि को प्रदान करने का यह सर्वप्रथम षड्यन्त्र था।

फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना (1803 ई.) के पूर्व डॉ. जॉन वार्थविक गिलक्रिस्त (John Worthwick Gilchrist) ने भारत की पूर्वी भाषाओं के रोमन लिप्यन्तरण की सर्वप्रथम अनुशंसा की थी। उसने अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक *दि हिन्दी रोमन आर्थोइपिग्राफिकल अल्टिमेटम* (The Hindee Roman Orthoepigraphical Ultimatum ) में भी इस मत को व्यक्त किया था। हिन्दी भाषा की किसी एक पद्धति को व्यक्त करने के लिए रोमन लिपि में दो या दो से अधिक अक्षरों के नियोजन की त्रुटि को भी उसने स्वीकार किया था।[5] उसने तथाकथित 'हिन्दुस्तानी जुबान' अर्थात् हिन्दी को रोमन लिपि में ही लिखा। निस्सन्देह गिलक्रिस्त द्वारा प्रतिपादित 'हिन्दुस्तानी जुबान' हिन्दी ही है। गिलक्रिस्त कृत *दि रूडिमेन्ट्स ऑफ हिन्दुस्तानी ग्रामर* (1806 ई.) आदि पुस्तकों में इस कथन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। गिलक्रिस्त ने अरबी किस्सा 'हिन्दुस्तानी जुबान' और रोमन लिपि में लिखा[6]।

गिलक्रिस्त ने *ओरिएन्टल फेबुलिस्ट* नामक अपनी पुस्तक में अंग्रेजी, हिन्दुस्तानी, फारसी, अरबी, ब्रजभाषा, बंगला और संस्कृत भाषाओं का रोमन लिप्यन्तरण प्रस्तुत किया। किन्तु *दि हिन्दी मैनुअल* में उसने हिन्दुस्तानी को फारसी और नागरी अक्षरों में प्रस्तुत किया; *दि हिन्दी स्टोरी टेलर* में रोमन, फारसी और नागरी लिपियाँ हैं।

फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता में हिन्दुस्तानी भाषा के भूतपूर्व प्रोफेसर डॉ. जे. गिलक्रिस्त का सम्मान तत्कालीन युग में विशेष था। अतएव, डॉ. गिलक्रिस्त का उक्त मत शासन और शासनेतर क्षेत्रों में अनुकूल-प्रतिकूल कोलाहल उत्पन्न करने में सफल हुआ।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी शासन का सर्वप्रथम संविधान एक मई 1793 ई. तद्नुसार बैशाख कृष्ण षष्ठी, विक्रम संवत् 1850 से प्रभावी हुआ था। उक्त संविधान के प्रथम अनुच्छेद की द्वितीय धारा में देवनागरी लिपि को सरकारी स्वीकृति प्राप्त हुई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सर्वप्रथम भारतीय संविधान के प्रथम अनुच्छेद की द्वितीय धारा के अनुसार, सरकारी मुहरों में देवनागरी लिपि में 'सदरेसियासत' शब्द

अनिवार्य कर दिया गया। उक्त संविधान के प्रथम अनुच्छेद की तृतीय धारा में यह स्पष्ट निर्देश था कि सदर दीवानी अदालत के द्वारा सवा दो इंचों की गोलाकार मुहर का व्यवहार किया जाएगा जिसमें फारसी और बंग लिपियों और भाषाओं के अतिरिक्त हिन्दुस्तानी भाषा और नागरी लिपि में भी यह अभिलेख अंकित रहेगा। "सदर दिवानी अदालत की मुहर" (The seal of the Sudder Dewanny Adawlut)[7] यह ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ब्रिटिश शासन द्वारा देवनागरी लिपि की सर्वप्रथम मान्यता और प्रयोग था।

उक्त संविधान की त्रयोदश धारा में सदर दिवानी अदालत की समस्त कार्यवाहियाँ बिहार क्षेत्र में हिन्दुस्तानी भाषा और नागरी लिपि में किए जाने का स्पष्ट प्रावधान था।[8]

फोर्ट विलियम (लोक विभाग), दिनांक 11 दिसम्बर, 1798 ई. के आदेशानुसार प्रत्येक राजपत्रित पदाधिकारी के मनोनयन के लिए सपर्षद गर्वनर जेनरल द्वारा पारित अधिनियमों-परिनियमों के अतिरिक्त कुछ भाषाओं की जानकारी अनिवार्य मानी गई जिससे कर्तव्य-निष्पादन में सुविधा हो। बंगाल, बिहार, उड़ीसा अथवा बनारस में न्यायाधीश अथवा किसी न्यायालय के निबंधक पद हेतु हिन्दुस्तानी और फारसी भाषाओं की विज्ञता अनिवार्य थी। बंगाल अथवा उड़ीसा में राजस्व या सीमा शुल्क समाहर्त्ता अथवा व्यापारिक प्रतिनिधि अथवा साल्ट एजेंट के पदों के लिए बंगला भाषा की जानकारी अनिवार्य थी। बिहार अथवा बनारस में राजस्व समाहर्त्ता, सीमा शुल्क समाहर्त्ता, व्यापारिक रिजेडेंट अथवा अफीम एजेंट के पदों के लिए हिन्दुस्तानी भाषा की जानकारी अनिवार्य थी। बंगाल के किसी न्यायाधीश को उस प्रान्त के क्षेत्रीय भाषा से परिचित होना चाहिए था, क्योंकि हिन्दुस्तानी और फारसी में बंगला भाषा के मिश्रण से लाभ था। यह आदेश एक जनवरी 1801 ई. से प्रभावी हुआ।[9]

भारत आनेवाले ब्रिटिश पदाधिकारियों और अन्य विदेशी सज्जनों के लिए हिदुस्तानी भाषा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य मानी गई थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार और गिलक्रिस्त के अनुसार हिन्दुस्तानी *वर्नाक्लूयर स्पीच ऑफ दि पिपुल* अर्थात् जनभाषा थी। बंगाल, मद्रास और बम्बई प्रेसिडेन्सियों में नागरिक एवं सैन्य संस्थानों के लिए हिन्दुस्तानी की जानकारी अनिवार्य थी। हिन्दुस्तानी भाषा अनुचित रूप से मूर्स (Moors) के नाम से भी अंग्रेजों के समाज में सम्बोधित की जाती थी। *दि ब्रिटिश इन्डियन मोनिटर*[10] (1806 ई.) के आवरण पृष्ठ पर गिलक्रिस्त ने हिन्दुस्तानी भाषा को 'मूर्स' कहे जाने के अनौचित्य को स्वीकार किया है।" Hindoostanee Language improperly called Moors.[11]

अधिनियम संख्या 29, सन् 1837 ई. के तहत न्यायिक और राजस्व विषयक कार्यवाहियों से फारसी भाषा का उन्मूलन किया गया। इसके पूर्व और उपरान्त भारतीय न्यायालयों अथवा राजस्व और अन्य सन्दर्भों में देवनागरी लिपि की स्थिति का पर्यवेक्षण करना अप्रासंगिक नहीं होगा।



कहा जा चुका है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सर्वप्रथम संविधान 1 मई, 1793 ई. से प्रभावी हुआ। उसके प्रथम अनुच्छेद की तृतीय धारा के अन्तर्गत हिन्दुस्तानी भाषा और देवनागरी लिपि में भी सदर दीवानी अदालत की मुहर अंकित करने का प्रावधान किया गया था।

अधिनियम 17 धारा 36, सन् 1795 ई.; अधिनियम 17 धारा 21, सन् 1796 ई.; अधिनियम 31 धारा 20, सन् 1803 ई.; अधिनियम 34 धारा 22, सन् 1803 ई. ; आईन 43 दफा 13, दफा 15 खण्ड 2, दफा 19 सन् 1803 ई.; आईन 45 दफा 18 तफसील 2 सन् 1803 ई.; अधिनियम 8 धारा 31 सन् 1805 ई., अधिनियम 18 धारा 7, खण्ड 20, सन् 1805 ई.; अधिनियम 10 धारा 3, सन् 1809 ई.; आज्ञापत्र कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स, 29 सितम्बर 1830 ई.; अधिसूचना, सदर बोर्ड, पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध, दिनांक 29 जुलाई, 1836 ई.; सचिव, सदर बोर्ड ऑफ रेवेन्यू अधिसूचना संख्या 45 दिनांक 30 मई 1837 ई.; सचिव, बंगाल सरकार पत्रांक 914 दिनांक 30 जून 1837 ई. और गर्वनर जेनरल इन कौंसिल, फोर्ट विलियम संकल्प दिनांक 4 सितम्बर, 1837 ई. में फारसी भाषा के अतिरिक्त क्रमशः *नागरी भाषा वो अच्छर, हीनदोसतानी भाषा वो नागरी अच्छर, हीनदवी जुवान वो नागरी अच्छर, हीनदोसतानी भाषा वो नागरी अच्छर, उस खत ओ बोली में...जो मोवाफिक वहाँ के चलन के हों, हीनदवी जुवान वो नागरी अच्छर, हिन्दी भाखा वो अच्छर, हिन्दी की बोली और नागरी अच्छरन, वर्नाक्युलर लेंग्वेज ऑफ दी डिस्ट्रिक्ट* अर्थात् जिले की देशभाषा आदि का स्पष्ट प्रावधान किया गया था।

अधिनियम संख्या 10 धारा 3, सन् 1809 ई. के तहत ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार के सिक्कों पर फारसी और देवनागरी लिपियों की प्रविष्टि हुई थी। किन्तु उसके मात्र छब्बीस वर्ष बाद अधिनियम संख्या 17 सन्, 1835 ई. के अन्तर्गत जो 1 सितम्बर, 1835 ई. से प्रभावी हुआ, सिक्कों से देवनागरी लिपि का उन्मूलन कर दिया गया। सन् 1835 ई. के अधिनियम की द्वितीय धारा के अनुसार सिक्कों के मूल्य नाम मात्र अंग्रेजी और फारसी में और 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' शब्द मात्र अंग्रेजी अर्थात् रोमन लिपि में अंकित किए जाने का प्रावधान किया गया। अधिनियम 17, धारा आठ सन् 1935 ई. के अन्तर्गत सोने के मोहर (पन्द्रह रुपए के समतुल्य), सोने के मोहर का एक तिहाई अर्थात् पाँच रुपए, दस रुपए (सोने के मोहर को दो तिहाई), तीस रुपए (डबल गोल्ड मोहर) अर्थात् द्विगुणित सोने के मोहर के सिक्कों पर उनके विभिन्न मूल्य नाम अंग्रेजी और फारसी में और *ईस्ट इण्डिया कम्पनी* शब्द मात्र अंग्रेजी अर्थात् रोमन लिपि में अंकित किए जाने का कानून लागू किया गया। ताँबे के सिक्कों को अभिलेख-भाषा के निर्णय करने का अधिकार उक्त अधिनियम की दसवीं धारा के अन्तर्गत गवर्नर जनरल इन कौंसिल के लिए सुरक्षित था।

अधिनियम संख्या 22 धारा 7 सन् 1836 ई. के तहत पथ कर की दरें, किराया, उसे वसूल करने के स्थान एवं राज्यपाल द्वारा निर्मित समस्त नियमों का प्रकाशन

'कलकटा गजट' में और अंग्रेजी, फारसी और बंगला भाषाओं में सभी पथ कर केन्द्रों पर जनता के अवलोकनार्थ प्रदर्शित करने का प्रावधान किया गया।[12] किन्तु देवनागरी लिपि अथवा हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का कोई प्रावधान इस अधिनियम के अन्तर्गत नहीं किया गया।

सदर दीवानी अदालतों (फोर्ट विलियम, कलकत्ता; फोर्ट सेंट जार्ज, मुम्बई और इलाहाबाद) में मुकदमे की कार्यवाही मूलतः देशीय भाषाओं (कंट्री लैंग्वेजेज) और उनकी लिपियों में ही लिखी जाती थी। सदर दीवानी अदालत के फैसले के खिलाफ प्रिवी कौंसिल में अपील करने पर सम्बन्धित सम्पूर्ण कार्यवाही, सभी साक्ष्य, दस्तावेज, निर्णय अथवा आदेश के अंग्रेजी अनुवाद की दो प्रतियाँ तैयार की जाती थी जिनका व्यय-भार वादी ही वहन करता था। उक्त अपील में मूलतः देशभाषा में लिखित कार्यवाही भेजने का नियम नहीं था। अधिनियम संख्या 2, सन् 1844 ई. इस तथ्य का श्रेष्ठ उदाहरण है।[13]

दि इण्डियन टोल्स एक्ट 1851 अर्थात् अधिनियम संख्या 8 सन् 1851 ई. (4 जुलाई, 1851 ई.) के अन्तर्गत सार्वजनिक मार्गों और सेतुओं के पथ कर की विवरणिका पथ कर की अपवर्चना के दंड-विधान और नियम विरुद्ध पथ कर ग्रहण आदि की लिखित अथवा मुद्रित सूचनाएँ पथकर द्वारा या किसी निर्दिष्ट स्थान विशेष में अंग्रेजी भाषा तथा अंकों और 'वर्नाक्युलर लेंग्वेज ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट' अर्थात् जिले की देशभाषा में प्रदर्शित करने का नियम था।[14]

अधिनियम संख्या 18 सन् 1854 ई. भारतीय रेल सम्बन्धी कानून है। इसके तहत, इस अधिनियम की एक प्रति, सामान्य नियमों-परिनियमों, समय सारिणी, किराए की विवरणिका आदि को प्रत्येक रेलवे स्टेशन के किसी महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक स्थान पर सम्बन्धित जिले की देशभाषा अर्थात् 'वर्नाक्युलर लेंग्वेज ऑफ दि डिस्ट्रिक्स्ट' और यदि आवश्यक हुआ तो स्थानीय सरकार द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य भाषा में प्रदर्शित करने का प्रावधान था।[15]

अधिनियम संख्या 33 सन् 1854 ई. न्यायालय के निर्णय, मुकदमे के विचार-बिन्दु दण्ड प्रक्रिया, निषेधाज्ञा, आदेश आदि न्यायाधीश अथवा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के न्यायिक पदाधिकारी की देशभाषा (वर्नाक्युलर लैंग्वेज) में लिपिबद्ध किए जाने का ही कानून था।[16]

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक अधिनियमों में जनहित की दृष्टि से फारसी भाषा और लिपि के अतिरिक्त देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी का प्रावधान भी किया गया था। अधिनियम 31 धारा 20, सन् 1803 ई. के कतिपय अंश इस दृष्टि से उल्लेख करने योग्य हैं।[17]

जन-साधारण के बोध के लिए ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार ने नागरी भाषा और नागरी लिपि का प्रावधान किया था।



अधिनियम 31 धारा 37 और 38, सन् 1803 ई. में अंग्रेजी के अतिरिक्त देशी भाषा का स्पष्ट प्रावधान था। उक्त अधिनियम में देशी भाषा का तात्पर्य देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी और बंगलिपि में लिखित बंगभाषा है, फारसी लिपि में लिखित फारसी भाषा नहीं।

अधिनियम 34 धारा 22, सन् 1803 ई. का अनुवाद "फारसी भाषा वो अछर वो हीनदोसतानी भाषा वो नागरी अछर" में किया जाना अनिवार्य अधिनियमित किया गया।

1803 ई. आईन 43 दफा 13 तफसील 6 में यह स्पष्ट प्रावधान था कि "जो सीटाम सभा के दावे जो जवाब गैरेह कागज के ऊपर किया जाएगा उसके ऊपर नीचे का मजमून फारसी भाखा वो अछर वो हीनदवी जुवान वो नागरी अक्षर में खोदा जाएगा।"[18]

कम्पनी सरकार ने टकसाल में भी हिन्दी को स्थापित किया। इस सन्दर्भ में 1803 ई. आईन 45 दफा 18 तफसील 2 के उल्लेखनीय अंश द्रष्टव्य हैं'ऊपर का लीखा दफा के तरफ के ईसतहार पावने पीछे उसका नक्ल फारसी भाखे वो अछर वो हीनदोसतानी भाषा वो नागरी अक्षर में लीखाए के टकसाल के साहेब टकसाल में आदमी के देखरेख जऐह में लटका वही।"[19]

अधिनियम 8 धारा 31, सन् 1805 में भी हिन्दी का प्रावधान किया गया। इस अधिनियम का अनुवाद जनहित में फारसी अथवा हिन्दी में करना अनिवार्य घोषित किया गया था।

अधिनियम 18 धारा 7 खण्ड 20, सन् 1805 ई. में कम्पनी सरकार का स्पष्ट आदेश था

"जो कैफियतें और खत और मुकदमे जमींदारों के तरफ से साहिब मजिस्टर के पास भेजे जावें और ऐसही जेतेने हुकुम और बातें मजिस्टर साहिब के तरफ से जमींदारों के पास भेजवाए जावें चाहिए के उस खत ओ बोली में लिखे जावें जो मोवाफिक वहा के चलन के हों।"[20]

उक्त अधिनियम में फारसी भाषा और लिपि का प्रावधान नहीं है।

पंडित चन्द्रबली पांडे के अनुसार, "कम्पनी सरकार ने एक साथ ही चार भाषाओं को अपनाया, जिनमें से फारसी और अंग्रेजी तो स्पष्ट ही विदेशी थी। देश में फारसी और अंग्रेजी के व्यवहार का कारण प्रत्यक्ष था। फारसी मुस्लिम शासन की राजभाषा थी तो अंग्रेजी कम्पनी सरकार की निजी भाषा। कम्पनी सरकार के साथ ही वह भी सरकारी भाषा हो गई थी। दूसरी ओर हिन्दुस्तानी और देशी भाषा की बात थी। देशी भाषा और हिन्दुस्तानी का परस्पर वही सम्बन्ध था जो किसी भी देशी तथा राष्ट्रभाषा का होता है। नागरी भाषा तथा नागरी लिपि का व्यवहार व्यापक रूप से हो रहा था, तो देशभाषा के नाते बंगला भाषा और बंगला लिपि का भी। बंगला का विधान भी आईनों में इसलिए कर दिया गया कि वह कम्पनी सरकार के केन्द्र की

भाषा थी। उसी के देश में कम्पनी सरकार का अड्डा जमा था। उसकी उपेक्षा किसी प्रकार सम्भव न थी।[21]

इसीलिए, अधिनियम 43 धारा 15 खण्ड 2 सन् 1803 ई. में क्रमशः फारसी भाषा और लिपि, बंगला भाषा और बंगलिपि, हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि और अधिनियम 43 धारा 19, सन् 1803 ई. में अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि, फारसी भाषा और फारसी लिपि, बंगला भाषा और बंग लिपि तथा हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का प्रावधान था।

अधिनियम 10 धारा 3, सन् 1809 ई. के अन्तर्गत ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार के सिक्कों पर फारसी और देवनागरी लिपियों की प्रविष्टि हुई।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स ने अपने 29 सितम्बर, 1830 ई. के आज्ञा पत्र में यह स्पष्ट आदेश दिया था कि भारतवासियों को न्यायधीश की भाषा का ज्ञान अर्जित करने के स्थान पर न्यायाधीश को भारतवासियों की भाषा के ज्ञान का अर्जन करना विशेष सुगम होगा।

## हेनरी पिट्स फार्सटर

हेनरी पिट्स फार्सटर ने *इंगलिश एण्ड बंगाली वोकेबुलरी* नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ दो खण्डों में लिखा था। इसका प्रथम खण्ड 1799 ई. और द्वितीय खण्ड 1802 ई. में प्रकाशित हुआ था। *ऐन एसे आन दि प्रिंसिपल ऑफ संस्कृत ग्रामर* नामक उसकी पुस्तक का प्रकाशन हुआ था। इसके पूर्व विलियम केरे (1761 ई.1834 ई.) ने 'ए ग्रामर ऑफ दि संस्कृत लैंग्वेज' नामक पुस्तक की रचना की थी जिसका प्रथम प्रकाशन मिशन प्रेस, सिरामपुर से 1806 ई. में हुआ था और उसमें देवनागरी लिपि भी मुद्रित थी। केरे का उक्त व्याकरण ही संस्कृत का सर्वप्रथम मुद्रित व्याकरण है। 1793 ई. में उसने कार्नवालिस कोड का अनुवाद भी अंग्रेजी में किया था। 1783 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में उसने प्रवेश किया था और कालान्तर में वह कलकत्ता टकसाल का एक उच्च पदाधिकारी भी था। फार्सटर ने अपने उक्त शब्दकोश की भूमिका में, बंगला भाषा को न्यायालय-भाषा बनाए जाने की वकालत की थी। उसने फारसी के स्थान पर बंगला भाषा को बंगाल की राजभाषा बनाए जाने की चेष्टा की थी। 10 सितम्बर, 1815 ई. को उसका निधन हो गया। तत्पश्चात् उसकी उक्त अनुशंसा ठण्डे बस्ते में धूल चाटती रही।

## कलकटा जर्नल

प्रेस की आजादी के समर्थक जेम्स सिल्क बंकिधम के सम्पादन में कलकत्ता से प्रकाशित अर्द्धसप्ताहिक पत्र 'कलकटा जर्नल' (अक्टूबर 1818 ई. सेअप्रैल 1823 ई.) में भारतीय भाषाओं के रोमन लिप्यन्तरण पर अनेक लेख प्रकाशित हुए थे।



## दि फ्रेन्ड ऑफ इण्डिया

सिरामपुर, कलकत्ता से प्रकाशित 'दि फ्रेन्ड ऑफ इण्डिया' (प्रकाशन अवधि 30 अप्रैल, 1818 ई.30 दिसम्बर 1876 ई.) नामक अंग्रेजी मासिक पत्र में जून-जुलाई 1821 ई. में एक लेख भारतीय न्यायालयों (इण्डियन कोर्ट्स ऑफ जुडिकेचर) में विदेशी भाषा और लिपि के व्यवहार की अनुपयोगिता पर प्रकाशित हुआ था। उक्त लेख के लेखन-प्रकाशन पर कलकत्ता से प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक 'कलकटा गजट' ने अत्यधिक प्रसन्नता व्यक्त की और उक्त लेख के समर्थन में 'आन दी यूज ऑफ परसियन इन इण्डियन लॉ कोर्ट्स' शीर्षक एक सम्पादकीय अग्रलेख 'कलकटा गजट', 12 जुलाई, बृहस्पतिवार, 1821 ई. में लिखा।

सम्पादकीय अग्रलेख में उक्त लेख के मूल आशय की पुनरावृत्ति करते हुए कहा गया कि ब्रिटिश प्रजा के लिए संस्थापित सर्वोच्च न्यायालय की सारी कार्यवाहियाँ अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि में क्रियान्वित की जाती हैं। किन्तु देशीय लोगों के न्यायालयों में न्यायिक (जुडिसियल) कार्यवाहियाँ एक ऐसी भाषा और लिपि में की जाती हैं जो वादी-प्रतिवादी, अधिवक्ताओं और न्यायाधीशों के लिए विदेशी ही थी और जो पर्सिया की भाषा थी। ब्रिटिश सरकार के साम्राज्य से प्रायः दो हजार मील सुदूर राज्य पर्सिया से भारत ने कोई कानून ग्रहण नहीं किया और जिससे भारत का कोई सम्पर्क भी नहीं है। राष्ट्रों के इतिहास में इस प्रकार की भाषागत असंगति ब्रिटिश सरकार के अधीन होना आश्चर्य का विषय है।[22]

विभिन्न राष्ट्रों के इतिहास के साक्ष्य उपस्थापित कर 'फ्रेन्ड ऑफ इण्डिया' ने यह प्रमाणित किया कि न्यायिक (जुडीसियल) कार्यवाहियों में देशीय भाषा (वर्नाकुलर टंग) का ही व्यवहार सदैव होता रहा है। भारत के न्यायालयों में फारसी भाषा और लिपि का व्यवहार उत्कृष्ट प्रतीत नहीं होता है।[23]

उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ में सरकारी सेवा के लिए आवश्यक अर्हता के अन्तर्गत दो भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य था जिनमें से एक भाषा फारसी अनिवार्य रूप से थी। इस प्रावधान के विरुद्ध फोर्ट विलियम कॉलेज पाठ्यक्रम में बंगला और हिन्दुस्तानी की अनुशंसा उक्त लेख में की गई थी।[24]

## फ्रेडरिक जॉन शोर

फ्रेडरिक जॉन शोर (31 मई, 1799 ई.29 मई, 1837 ई.) ने भारत की कार्यपालिका एवं न्यायपालिका की भाषा और लिपि के प्रश्न पर अत्यन्त तर्कसम्मत, गहन, निष्पक्ष, न्यायपूर्ण एवं व्यापक ढंग से विचार किया। वे व्यवहार न्यायालय और दाण्डिक सत्र, फर्रूखाबाद (उत्तर प्रदेश) के न्यायाधीश थे। भाषा और लिपि विषयक उनका प्रथम लेख 29 मई, 1832 ई. का है। इस विषय पर उनके लेखों का लेखन-काल मुख्यतः 20 मई, 1832 ई. से 1 जून, 1834 ई. तक है। 25 महीने 13

दिनों की अल्पावधि में लिखित भाषा और लिपि विषयक उनके लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। भाषा और लिपि विषयक अपने प्रथम लेख 'ऑन दि युज ऑफ दि हिन्दुस्तानी लैंग्वेज' (लेखन-तिथि 20 मई, 1832 ई.) में फ्रेडरिक जॉन शोर ने बताया कि भारत में शासक और शासितों की भाषा भिन्न है। उसने भारतीय न्यायालयों में प्रचलित फारसी भाषा के औचित्य का अत्यन्त तार्किक ढंग से खण्डन किया। पढ़ दिए जाने पर अभ्यास के कारण थोड़ा समझने के बावजूद शासनाधिकारी और दण्डाधिकारी भारत में से तीस भी नहीं थे जो फारसी भाषा सुगमतापूर्वक पढ़ सकते थे या पुलिस प्रतिवेदन का शुद्ध अनुवाद करने योग्य थे और आवश्यक आदेश शीघ्रतापूर्वक शुद्ध फारसी लिखने में वे सक्षम नहीं थे। भारत की बहुसंख्यक जनता अदालत की कार्यवाहियों को फारसी भाषा और लिपि की दुर्बोधता एवं अज्ञान के कारण नहीं समझती थी। फारसी उसके लिए विदेशी भाषा थी। यह न्यायालय की भाषा और लिपि थी। यह सत्य है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार फारसी भाषा सीखने वाले अंग्रेज पदाधिकारियों को प्रश्रय-प्रोत्साहन प्रदान करती थी।[25] उनके लिए फारसी की जानकारी आवश्यक थी, क्योंकि फारसी कचहरी की भाषा थी। फारसी लिपि कचहरी-लिपि थी। किन्तु स्थिति कुछ और ही थी। कोलकाता से बाहर सम्राट के पदाधिकारियों के सेवकों को छोड़कर शायद ही ऐसा कोई देशीय व्यक्ति (नेटिव) था जो अंग्रेजी भाषा बोलता या समझता हो। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत की यह भाषागत स्थिति थी।[26]

अंग्रेजी भाषा को न्यायालय-भाषा का स्तर दिए जाने के लिए उन्नीसवीं शताब्दी के चतुर्थ दशक के प्रारम्भ में कतिपय चर्चा हुई थी। फ्रेडरिक जॉन शोर ने इसका विरोध किया था। उसने हिन्दुस्तानी को न्यायालय की भाषा बनाए जाने की सर्वोच्च एवं अत्यधिक अनुशंसा की और इसकी सर्वव्यापिनी उपयोगिता को रेखांकित किया[27] वह प्रथम अंग्रेज पदाधिकारी था जिसने ऐसी अनुशंसा की।

फ्रेडरिक जॉन शोर ने 'वर्नाक्यूलर लैंग्वेज' अर्थात् देशीय भाषा के रोमन लिप्यन्तरण के सुझाव की बड़ी तीखी आलोचना की और इस सुझाव को अमान्य कर दिया।[28] रोमन लिपि भारत की लिपि नहीं है। यह विदेशी लिपि है। किसी अति विशाल जनसंख्या पर विदेशी लिपि को बलपूर्वक लादने के औचित्य को उसने अस्वीकार किया और कहा कि रोमन लिपि में देशीय भाषा अर्थात् हिन्दुस्तानी भाषा की ध्वनियों को पूर्णतया अभिव्यक्त करनेवाले समुचित अक्षरों का अभाव है जिसके लिए नए अक्षरों का आविष्कार करना होगा।[29] ऐसी स्थिति में सर्वप्रचलित और शताब्दियों से सर्वस्वीकृत देवनागरी लिपि, जो हिन्दुस्तानी भाषा की एकमात्र पूर्ण समर्थ लिपि है, को स्वीकार क्यों नहीं किया जाए? एक विदेशी लिपि के फलस्वरूप करोड़ों नेटिव अर्थात् भारतीयों को असुविधा होगी।[30] उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत के सभी वर्गों के अंग्रेजों जानकारों की संख्या प्रायः तीस हजार ही थी।[31] भारत की विशाल जनसंख्या की तुलना में भारत में अंग्रेजों की संख्या भी नगण्य ही थी।



ऐसी स्थिति में देशीय भाषा के रोमन लिप्यान्तरण का प्रश्न सर्वथा अविवेकपूर्ण था। किसी सम्पूर्ण राष्ट्र को अपनी लिपि के परिवर्तन के लिए बाध्य करना एक कठिन कार्य है। उसने रोमन लिपि को भारत के न्यायालय-लिपि बनाए जाने का विरोध अत्यन्त तार्किक ढंग से अनेक बार किया।[32]

हिन्दी-हिन्दुस्तानी की सम्पूर्ण ध्वनियों को व्यक्त करनेवाली क्षमता के अभाव के कारण डेवी, विलियम्स, हाल्हेड, सर विलियम जोन्स, फार्स्टर, केरी, जॉन शेक्सपीयर, हॉटन, आरनोट, फोर्बेस आदि अंग्रेज विद्वानों के हिन्दी भाषा के रोमन-लिप्यन्तरण प्रयास असफल ही सिद्ध हुए। एतदर्थ रोमन लिपि में पर्याप्त सुधार एवं संशोधन की आवश्यकता है।

फेडरिक जॉन शोर ने डॉ. जॉन गिलक्राइस्ट द्वारा प्रतिपादित 'हिन्दी-रोमन आर्थोइपिग्राफिकल अल्फावेट' की कटु आलोचना विभिन्न समुचित तथ्यों के आधार पर की। उन्होंने जान गिलक्राइस्त द्वारा प्रतिपादित लिपि से क्लिष्टता, दुरूहता और अव्यावहारिकता आदि को रेखांकित किया।[33]

रोमन लिपि में भारतीय भाषाओं का लेखन यूरोप में विद्यार्थियों के लिए उपयोगी हो सकता था क्योंकि उच्चारणों का प्रशिक्षण प्रारम्भ करने के लिए वहाँ देशीय शिक्षकों का अभाव था। किन्तु भारत की विशाल जनता के लिए इसकी कोई सार्थकता, उपयोगिता और प्रासंगिकता नहीं हो सकती।

कोई भी स्वतन्त्र या परतन्त्र या सभ्य देश जिसकी गौरवमयी लम्बी परम्परा हो और जिसका अपना समृद्ध साहित्य हो, अपनी लिपि का परिवर्तन नहीं कर सकता। फ्रेडरिक जॉन शोर ने भी इस सिद्धान्त को स्वीकार किया।[34]

फ्रेडरिक जॉन शोर ने यह स्वीकार किया कि अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीयों में अत्यधिक उग्र पूर्वाग्रह थे। उन पर विदेशी रोमन लिपि लादे जाने से अंग्रेजों के प्रति विरोध की ज्वाला अधिक उग्र हो जाने की आशंका थी।[35] देवनागरी लिपि को अंग्रेजी भाषा में यथासम्भव प्रस्थापित करने के सुझाव के कार्य कराने से देशीय लोगों को अंग्रेजी भाषा का कार्यसाधक ज्ञान सम्भाव्य है। जॉन गिलक्राइस्त द्वारा प्रतिपादित हिन्दुस्तानी के रोमन लित्यन्तरण से अनेक लोगों का हिन्दुस्तानी का कार्य साधक ज्ञान हुआ। किन्तु उसका यह रोमन लिप्यान्तरण का उत्साह मूर्खतापूर्ण ही था।

जन शिक्षा के लिए जॉन फ्रेडरिक शोर ने तीन सुझाव दिए

1. देशीय भाषाओं और देश की लिपि में ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के शिक्षण के लिए विद्यालयों की स्थापना की जाए।
2. विभिन्न विषयों पर सूचना प्रदायिनी उपयोगी पुस्तकों के अनुवाद देशीय भाषाओं और देश-लिपि में किए जाएँ।
3. उच्चतर अध्ययन के प्रति विशेष अभिरुचि रखनेवाले व्यक्तियों को अंग्रेजी ज्ञाषा का ज्ञान प्रदान किया जाए। मूल बंगाल के लिए बंगला और हिन्दुस्तान के लिए नागरी को चरितार्थ किया जाना चाहिए।[36]

इस सम्बन्ध में ध्यातव्य है कि भारतीय भाषाओं के रोमन लिप्यन्तरण की चर्चा विगत प्रायः दो सौ वर्षों से यदा-कदा होती रही है। इस चर्चा का प्रारम्भ सन् 1788 ई. में हुआ जब विलियम जोन्स ने 'ए डिस्सर्टेशन ऑन दि आरथोग्राफी ऑफ एशियाटिक वर्ड्स इन रोमन लेटर्स' नामक महत्त्वपूर्ण निबन्ध लिखा।[37] उन्होंने देवनागरी लिपि की वैज्ञानिक व्यवस्था को अन्य लिपियों की अपेक्षा सर्वाधिक श्रेष्ठ घोषित कर भारतीय भाषाओं के रोमन लिप्यन्तरण के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था।

ट्रेवेलियन, जे. प्रिन्सेप आदि के द्वारा लिखित और सिरामपुर, कोलकाता से 1834 ई. में प्रकाशित 'दि अप्लिकेशन ऑफ दि रोमन अल्फाबेट टू ऑल दि ओरिएन्टल लेंग्वेजेज' (The application of the Roman Alphabet to all the Oriental Languages) नामक पुस्तक में सभी भारतीय भाषाओं के रोमन लिप्यन्तरण की वकालत की गई।

1854 ई. में डब्ल्यू.एन.लीस (W.N. Lees) ने 'ऑन दि अप्लिकेशन ऑफ दी करेक्टर्स ऑफ दि रोमन अल्फाबेट टू ओरिएन्टल लेंग्वेजेज' (On the application of the characters of the Roman alphabet to Oriental Languages) नामक निबन्ध में इस प्रश्न को पुनर्जीवित किया।[38] कैप्टन लीस की दलील थी कि हिन्दुस्तानी की अपनी कोई लिपि नहीं है। अतएव हिन्दुस्तानी भाषा रोमन लिप्यन्तरण के सर्वथा अनुकूल है। लीस ने एसियाटिक सोसायटी की बैठक (1863 ई.) में इस दलील की पुनरावृत्ति की।

1867 ई. में एफ.ए. ग्राउस (F.S. Growes) ने भारतीय लिपियों के रोमन लिप्यन्तरण के प्रस्ताव को अमान्य कर दिया।[39] ग्राउस द्वारा भारतीय भाषाओं के रोमन लिप्यन्तरण के प्रस्ताव को अमान्य कर दिए जाने से ही देवनागरी लिपि-आन्दोलन के ईस्ट इण्डिया कम्पनी काल का समापन हुआ।

सचिव, सदर बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के नाम सम्बोधित पत्रांक 914 दिनांक 30 जून 1837 ई. में सचिव, बंगाल सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया था कि यूरोपीय पदाधिकारियों के पारस्परिक पत्राचार अंग्रेजी में और सदर बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के प्रत्येक विभाग में जनता से सम्बन्धित सरकारी कार्य और आदेश देशभाषा और जनभाषा में निष्पादित किए जाएँ।[40]

सुदीर्घ अवधि से वहिष्कृत जनता की देशभाषा को समुचित स्थान प्रदान करना सरकार का लक्ष्य था।

किन्तु बंगाल संहिता के कतिपय पूर्व प्रावधानों ने न्यायिक एवं राजस्व कार्य-कलापों में फारसी भाषा और उसकी लिपि को स्थापित कर दिया था। अतएव, वायसराय की व्यवस्थापक सभा में 4 सितम्बर, 1837 ई. को देशीय भाषा विषयक विधेयक उपस्थापित-पारित किया गया। इसमें शासकीय स्तर पर फारसी के स्थान पर



देशभाषा को प्रतिष्ठा प्रदान की गई। किन्तु सन् 1837 ई. के राज्यादेश मात्र देशभाषा के विषय में था। लिपि के सम्बन्ध में सरकार का उक्त राज्यादेश मौन था। हिन्दुस्तानी भाषा फारसी अथवा देवनागरी लिपि में लिखी जाए। इस सम्बन्ध में सरकार ने विचार अथवा निर्णय नहीं किया।

वायसराय की व्यवस्थापिक सभा में 4 सितम्बर, 1839 ई. को देशीय भाषा विषयक विधेयक पारित किया गया। इसमें शासकीय स्तर पर फारसी के स्थान पर देशभाषा को प्रतिष्ठा प्रदान की गई।

4 सितम्बर, 1837 ई. का यह संकल्प 20 नवम्बर, 1837 ई. को संविधान का एक अंग बन गया जो अधिनियम संख्या 29 सन् 1837 ई. के नाम से प्रतिष्ठापित हुआ। अधिनियम संख्या 29 सन् 1837 ई. 1 दिसम्बर, 1837 से प्रभावी हुआ।

सच तो यह है कि "हिन्दुस्तान (जिसके अन्तर्गत बिहार, पश्चिमोत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश का कुछ भाग है) की भाषा हिन्दी थी जो नागरी लिपि को उनके अन्य रूपों में लिखी जाती है। परन्तु इस भाषा के बदले इन प्रान्तों की कचहरियों में उर्दू भाषा को 'हिन्दुस्तानी' नाम दिया जिससे यह समझा गया कि जैसे बंगाल की भाषा बंगाली और गुजरात की गुजराती है वैसे ही हिन्दुस्तान की भाषा भी हिन्दुस्तानी है। इस भूल से उर्दू का हिन्दुस्तान की कचहरियों में प्रचार हुआ।"[41]

बंगाल में बंगला और उड़ीसा में उड़िया भाषा न्यायालय और राजस्व की भाषा और लिपि बन गई। किन्तु तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध, बिहार और मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में न्यायालय और राजस्व की भाषा और लिपि के सम्बन्ध में न्यायसंगत निर्णय नहीं लिया जा सका। फारसी के स्थान पर उर्दू को उपर्युक्त प्रदेशों में स्थापित किया गया। इस सम्बन्ध में तर्क यह प्रस्तुत किया गया कि कुछ यूरोपीय लेखकों ने उर्दू का नामकरण 'हिन्दुस्तानी' किया था। बंगाल में बंगाली, गुजरात में गुजराती की पद्धति से उर्दू को हिन्दुस्तान की भाषा का गलत अर्थ दे दिया गया।

सदर दीवानी अदालत के मतानुसार कचहरियों की कार्रवाई सरल, सुबोध और सुगम भाषा में की जाए। किन्तु हिन्दी की घोर उपेक्षा की गई। सुदीर्घ काल से फारसी से बोझिल उर्दू-लेखन के कारण कचहरियों के कर्मचारियों को लिपि-देवनागरी में लिखने से घृणा हुई जिसके फलस्वरूप कचहरियों में उर्दू भाषा और फारसी अक्षरों का प्रचार हुआ।

तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध की जनभाषा या देशीय भाषा देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी रह गई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी और विक्टोरिया के शासनकाल में सरकार की ओर से भी यह तथ्य अनेक प्रतिवेदनों में और अवसरों पर स्वीकार किया गया। पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध सरकार के सचिव ने प्राचार्य, आगरा कॉलेज, आगरा को सम्बोधित पत्रांक 750 दिनांक 17 अगस्त, 1844 ई. में और पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध के विद्यालयों के महानिदेशक ने सन् 1854-55 ई. के

अपने प्रतिवेदन की पृष्ठ संख्या 38 पर इस तथ्य को स्वीकार किया था। पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध सरकार ने ज्ञापांक संख्या 4011 दिनांक 30 सितम्बर, 1854 ई. में समाहर्त्ताओं और आयुक्तों को यह निर्देश प्रदान किया था कि पटवारियों के अभिलेख उस भाषा और लिपि में लिपिबद्ध किए जाएँ जो बहुसंख्यक जनता के लिए सर्वाधिक सुपरिचित हों और उक्त भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी ही हो सकती थी। राजस्व बोर्ड, पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध के समाहर्त्ताओं और आयुक्तों को सम्बोधित अधिसूचना संख्या 8, 1857 में इसी निर्देश की पुनरावृत्ति थे।[42]

अनेक मान्य यूरोपीय और भारतीय हिन्दीतर विद्वानों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी और विक्टोरिया शासन कालों में देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया था।[43]

सदर दीवानी अदालत, पश्चिमोत्तर प्रदेश अधिसूचना संख्या 33 दिनांक 19 अप्रैल, 1839 ई. में अदालतों की समस्त कार्यभाषा फारसी के स्थान पर 1 जुलाई, 1839 ई. से हिन्दुस्तानी में परिवर्तित करने का स्पष्ट आदेश प्रदान किया गया था। न्यायालयों की सम्पूर्ण कार्यवाही सरल, सुबोध उर्दू अथवा जहाँ प्रचलन हो वहाँ हिन्दी का व्यवहार करने का आदेश भी उक्त अधिसूचना में था।[44] किन्तु कचहरी के अमलों के प्रभाव से हिन्दी के व्यवहार के निर्देश की अवहेलना की गई। एक लम्बी अवधि तक फारसीपूरित उर्दू लेखन के अभ्यास के कारण कचहरी के अमले जनभाषा हिन्दी और देवनागरी लिपि को उपेक्षा, तिरस्कार एवं घृणा की दृष्टि से देखते थे।[45] अतः फारसी लिपि में लिखित उर्दू कचहरी की भाषा बन गई थी। किन्तु सरकार सरल सुबोध उर्दू की पक्षधर थी, फारसीपूरित उर्दू का नहीं।

सदर बोर्ड ऑफ रेवेन्यू, पश्चिमोत्तर प्रदेश अधिसूचना संख्या3 दिनांक 28 अगस्त, 1840 ई. के अन्तर्गत प्रावधान था कि न्यायालय और राजस्व विभाग की भाषा ऐसी लिखी जाए कि जिसे एक कुलीन हिन्दुस्तानी फारसी से पूर्णतया वंचित रहने पर भी बोलता हो।[46] न्यायालय और राजस्व विभाग का प्रत्यक्ष सम्बन्ध जनता से है। अतएव सरकार ने सुबोध जनभाषा की अनुशंसा की। किन्तु उपर्युक्त राजाज्ञाओं का परिणाम निष्फल हुआ। व्यवहार-न्यायालय, दाण्डिक न्यायालय और राजस्व न्यायालय के व्यवहार की भाषा प्रायः फारसी ही बनी रही, जनभाषा नहीं। अतः सरकार ने सदर दीवानी अदालत और राजस्व-परिषद से उचित परामर्श कर न्यायालयों के पदाधिकारियों को यह आदेश दिया कि सभी देशीय भाषाओं के अभिलेख सुबोध जनभाषा में अभिलेखबद्ध किए जाएँ।

किन्तु इस 28 अगस्त, 1840 ई. की अधिसूचना का कोई परिणाम अथवा प्रभाव नहीं हो सका। प्रायः इसके पन्द्रह वर्ष पश्चात् सरकार ने अनुभव किया कि दीवानी, फौजदारी और राजस्व न्यायालयों की कार्यवाही एक विशिष्ट और विदेशी भाषा में लिखी जाती है। अतएव अनुसंधान के बाद सरकार ने न्यायालय के



पदाधिकारियों को निर्देश दिया कि सरकारी कागजात ऐसी भाषा में लिखे जाएँ जिन्हें जनसाधारण भली-भाँति समझ सके। 9 मई, 1854 ई. का आग्रह-पत्र इसी आशय का था। परन्तु इसका भी कुछ प्रभाव नहीं हुआ। इस प्रकार 28 अगस्त, 1840 ई. और 9 मई, 1854 ई. के राज्यादेश ठण्डे बस्ते में बन्द कर दिए गए।

1854 ई. में सरकार ने यह आदेश दिया की पटवारियों के कागजात हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि में लिखे जाएँ। यह निर्देश पत्र राजस्व परिषद, पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध की संकल्प संख्या 4011 दिनांक 30 सितम्बर, 1854 ई. में इस दृष्टि से निहित है।[47]

सन् 1856 ई. में सरकार ने यह आज्ञा दी कि माल विभाग के कर्मचारी, तहसीलदार आदि (जो उर्दू भली-भाँति जानते थे) नागरी का अक्षर ज्ञान भी प्राप्त करें। उनके लिए देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी भाषा की परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया और यह घोषणा की गई कि उक्त आदेश का उल्लंघन करने पर उन्हें सेवामुक्त कर दिया जाएगा। सरकार के इस आदेश का वांछित परिणाम हुआ। अत्यन्त कम समय में, सभी राजस्व पदाधिकारीगण, मुसलमान तहसीलदारों आदि ने देवनागरी लिपि पढ़ने-लिखने का ज्ञान अर्जित कर लिया और निर्धारित देवनागरी परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त की।[48] किन्तु 1857 ई. के भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के दमन के बाद सरकार की मनोवृत्ति में परिवर्तन हुआ और उक्त नागरी विषयक आदेश के प्रति अवहेलना की नीति को स्वयं सरकार की ओर से प्रश्रय प्रदान किया गया।[49]

सन् 1837 ई. से 1900 ई. तक कचहरी-भाषा में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सका। डॉक्टर फैलन, ग्राउस, फ्रेडरिक, पिंकौट आदि विद्वानों और भाषा तत्त्ववेत्ताओं ने इस कचहरी-भाषा की बड़ी निन्दा की थी।

देवनागरी लिपि की प्रतिष्ठा के बिना कचहरी-भाषा का सरलीकरण सम्भव नहीं था। अनेक सरकारी आज्ञाओं के बावजूद कचहरी भाषा में अति क्लिष्ट, दुर्बोध एवं जटिल अरबी और फारसी शब्दों का अनावश्यक बोझ था। अदालतों के कार्य फारसी लिपि में सम्पन्न किए जाते थे। अतएव कचहरी-भाषा भी अति दुरूह एवं दुर्बोध थी। फारसी लिपि के स्थान पर देवनागरी लिपि को कचहरी-लिपि की अनिवार्य संवैधानिक स्वीकृति के पश्चात् सरल और सुगम हिन्दुस्तानी अथवा हिन्दी का प्रचार अवश्यम्भावी था। यह अनुभव किया गया कि जब तक कचहरियों की कार्यवाही फारसी लिपि में लिखी जाएगी तब तक हिन्दुस्तानी भाषा में से अरबी और फारसी शब्दों का बहिष्कार अथवा सरल, सुबोध, सुगम और सार्वजनिक कचहरी-भाषा की स्थापना कदापि सम्भव नहीं है।[50]

तात्पर्य यह कि अधिनियम संख्या 29 सन् 1837 ई. के पूर्व, ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार ने जनसाधारण से सम्बन्धित अधिनियमों, अधिसूचनाओं, परिनियमों,

अनुदेशों, संकल्पों, निर्देशपत्रों, शासनादेशों आदि में फारसी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के प्रचलन का प्रावधान किया। अधिनियम संख्या 22 सन् 1836 ई. में मात्र अंग्रेजी, फारसी और बंगला भाषाओं को प्रश्रय दिया। गर्वनर जेनरल इन कौंसिल, फोर्ट विलियम के संकल्प दिनांक 4 सितम्बर, 1837 ई. में 'वर्नाक्युलर लैंग्वेज ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट' अर्थात् जिले या जनपद की देशभाषा को प्रमुखता प्रदान की गई। 1809 ई. से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सिक्कों पर फारसी और देवनागरी लिपियाँ प्रतिष्ठित की गईं। 01 सितम्बर, 1853 ई. से उक्त सिक्कों से देवनागरी लिपि का उन्मूलन कर मात्र अंग्रेजी और फारसी को सिक्कों की भाषा और लिपि का गौरव प्रदान किया गया।

सन् 1837 ई. के उपरान्त मुख्यतः 4 जुलाई, 1851 ई. से कम्पनी सरकार और विक्टोरिया शासन ने अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त 'वर्नाक्युलर लैंग्वेज ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट', 'लैंग्वेज ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट', 'वर्नाक्युलर लैंग्वेज ऑफ दी प्रिजाइडिंग ऑफिसर ऑफ प्रिंसिपल लैंग्वेज ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट' का ही प्रावधान अपने विभिन्न अधिनियमों, अधिसूचनाओं और परिनियमों में किया गया। फारसी या उर्दू भाषा का स्पष्ट उल्लेख मात्र एक अपवाद को छोड़कर अन्यत्र नहीं किया गया। मात्र अधिनियम संख्या 1 सन् 1867 ई. में उर्दू भाषा का स्पष्ट उल्लेख किया गया। अधिनियम संख्या 7 सन् 1876 ई. में 'वर्नाक्युलर लैंग्वेज एण्ड करेक्टर ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट' उल्लिखित हुआ अर्थात् लिपि का उल्लेख जानबूझ कर दिया गया।

सन् 1837 ई. के पूर्व देवनागरी लिपि विभिन्न अधिनियमों, अधिसूचनाओं, परिनियमों और संकल्पों में मुख्य रूप से उल्लिखित की जाती रही। किन्तु इसके बाद सरकार ने लिपि के प्रश्न को गौण कर अधिनियम संख्या 7 सन् 1876 ई. के अपवाद को छोड़कर, जिले की देशभाषा को प्रश्रय दिया। जिले की देशभाषा निस्सन्देह हिन्दी ही थी जिसकी एकमात्र लिपि देवनागरी थी। किन्तु कर्मचारियों के परम्परागत स्वार्थवश इसे गलत ढंग से परिभाषित कर उर्दू भाषा और इसकी फारसी लिपि को मुख्य रूप से प्रश्रय प्रदान किया गया। भाषा और लिपि विषयक सरकार के अनुदेशों, अधिनियमों, कार्यपालक आदेशों, निर्देशपत्रों और राज्यादेशों का अनुपालन न्याय और निष्ठा के आधार पर नहीं किया गया। सरकार की त्रुटि यह थी कि उसने 'वर्नाक्युलर लैंग्वेज ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट' को परिभाषित अथवा उसका स्पष्ट निर्देश प्रायः नहीं किया और अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार उसे परिभाषित करने की अनियन्त्रित सुविधाएँ राज्यकर्मियों और राज्याधिकारियों को प्रदान कर दी। हिन्दी भाषा के पवित्र अधिकार को उसने विवाद का विषय बना दिया। कार्यालयों, न्यायालयों आदि के कर्मचारियों द्वारा शासकों और शासितों की लिपि अथवा भाषा नहीं रहने के बावजूद, पूर्व प्रचलित क्लिष्ट उर्दू और फारसी लिपि को प्रयुक्त किए जाते रहने की गलत और दुर्भाग्यपूर्ण निरन्तरता प्रदान कर दी गयी। इसके सुदूरव्यापी



प्रभाव से देवनागरी लिपि-आन्दोलन सम्पूर्ण हिन्दी भाषा और हिन्दी बहुल क्षेत्रों में हुआ पर कचहरी-भाषा क्लिष्ट उर्दू के रूप में चलती रही। कचहरी की यह भाषा हिन्दी भाषा के स्वाभाविक संस्कार की सार्वजनिक हत्या ही थी।

## सन्दर्भ सूत्र


1. Bihar Through the Ages, General Editor : R.R. Diwakar, Chapter XVIII, Freedom Movement in Bihar', Page 639
2. उपरिवत्।
3. विशेष द्रष्टव्य :

(A) Selections from Calcutta Gazattes (Vol.II). Edited by W.S. Seton-Kar, Calcutta, 1865, Editorial Part II, Page 381.

(B) Sir William Jones (1746-1794)-SUNITI KUMAR CHATTERJEE Jones Bicent, Vol. 1948, p. 81/96.

(C) Sir William Jones as a poet –R.K. Dasgupta—Jones Bicent Vol. 1948. P. 162/166.

4. (A) Asiatick Researches. (Volume First.), London Reprint edition 1798, Dissertation on the Orthography of Asiatick Words in Roman Letters. Page 13.

(B) Sir William Jones's Works (Vol. I) Page 186.

(C) Asiatick Researches (Volume I)] 1788, Page 1/56

5. The Rudiments of Hindoostanee Grammar, John Borthwick Gilchrist, London, 1806, Preface, Page XXX.
6. Rudiments of Hindoostanee Grammar, John Borthwick Gilchrist, Preface, Page XXIX.
7. The Regulation and Laws enacted by the Governor General in Council, for the civil Government of the Provinces under the Presidency of Fort William in Bengal, from 1793 to 1828, inclusive arrangd in Departments, on the Plan of Molong's synopsis Vol. I, Judicial Department, Division I, Civil Regulations, Baptist Mission Press Edition, Calcutta, 1829, P.1
8. उपरिवत्। पृ. 5 और 8
9. The British Indian Monitor or the Antijargonist Stranger's Guide, Oriental Linguist and various other works, compressed into a series of portable volumes, on the Hindoostanee Language improperly called Moors with considerable information respescting Eastern Tongues, Manners, Customs, i.e.i.e. By the Author of Hindoostanee Philology JOHN BORTHWICK GILCHRIST, Vol. I 1806, Preface

10. The British Indian Monitor—John Borthwick Gilchrist, Vol. I, 1806, Page XCI/XC 99.
11. Ibid, Page XCII/XCIII.
12. The Unrepealed Acts of the Legislative Councils of India and Bengal—James W. Furreli. Vol. I Part II, Calcutta, P. 5/6
13. उपरिवत्।
14. The Unrepealed Central Acts with Chronological Table and Index, Vol.I, 1938, P.80
15. उपरिवत्। पृष्ठ 170
16. उपरिवत्।
17. चन्द्रबली पाण्डे : कचहरी की भाषा और लिपि। पृष्ठ 27
18. उपरिवत्। पृष्ठ 28/29
19. उपरिवत्। पृष्ठ 29
20. उपरिवत्। पृष्ठ 32/33
21. उपरिवत्। पृष्ठ 33
22. (a) On the uses of Persian in Law-Courts, Calcutta Gazette July 12, Thursday, 1821 A.D.
    (b) Selections from Calcutta Gazettes by High David Sandeman Volume V, 1869
23. On the use of Persian in Law-Courts, Calcutta Gazette, July 12, Thursday, 1821, Part II, Editorial, Page 412/443.
24. उपरिवत्।

## विशेष द्रष्टव्य

25. (A) Extract from the proceedings of the Governor General in Council, Dated the 24th August, 1792, in the Public Department, The Calcutta Gazette & the Oriental Advertiser, 6 Sept. 1792.
    (B) Selections from Calcutta Gazettes, Vol.II, 1865. Offcial Part I, Page 66.
    (C) The Calcutta Gazette & the Oriental Advertiser, Thursday, the 23rd April, 1795.
    (D) Selections from Calcutta Gazettes, Vol. II, 1865. Offical Part I, Page 147.
    (E) On the introduction of the English Language in to the Courts of Justice शीर्षक लेख।



(लेखन-तिथि 20 जून, 1833 ई.)
Notes on Indian Affaris, Hon'ble Frederick John Shore Vol. I, London, Chapter XIX.
    (F) On the Language and Character best suited to the Education of the people. शीर्षक लेख। (लेखन-तिथि 20 जून, 1834 ई.)
Notes on Indian Affairs :; Vol.1, Chapter XXX.
26. Notes on Indian Affairs, Vol. London, Chapter V on the use of the Hindustanee Language, Page 25/26
27. I bid, P. 29/30
28. उपरिवत्। पृष्ठ 36
29. उपरिवत्। पृष्ठ 216 और 443
30. उपरिवत्।
31. On the Language and Character best suited to the Education of the people.
    -Notes on Indian Affairs, Vol. I, Chapter XXX, page 343/444
32. On the Injustice of compelling the people of India to a adopt a Foreign Language and Character (Dated 1 June, 1834)
    -Noted on Indian Affairs, Vol.II P. 1/5
33. Frederick John Shore : Notes on Indian Affairs, Vol.II, Page. 6 (Footnote)
34. "No Civilized nation, who has possessed the use of letters for centuries, will ever voluntarily change them."
    Notes on Indian Affairs, Voll. II; Page 6.
35. उपरिवत्।
36. Frederick John Shore : Notes on Indian Affairs, Vol.I, page 443.
37. Asiatick Researches 1788. Volume V, 'A Dissertation on the Orthography of Asiatick Words in Roman Letters, P 1/56.
38. The Journal of the Asiatic Society of Bengal. 1854. Volume XXIII, Page 345/359.
39. On the transliteration of Indian Alphabets in Roman Characters-F.S. Growse,
    -The Journal the Asiatik Society of Bengal. 1867. Volume XXXVI (I), Page 136/142.
40. Circular Orders of the Sudder Board of Revenue, Edition 1838pp. 737/739.
41. (क) पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध में अदालती अक्षर और प्राइमरी शिक्षा। पृष्ठ 2
    (ख) बाबू श्यामसुन्दर दास के विनिबन्धों का संग्रह। पृष्ठ 348

42. Court Character and Primary Education in the N.W. Provinces & Oudh. 1897. page 4.
43. (A) The Calcutta Review, Vol. IX, 1848.
- Thompson's Dictionary, Page 375/377.
(B) Dr. Rajendra Lal Mitra; 'On the origin of the Hindi Language and its relation to the Urdu dialect.
-Journal of the Asiatik Society for Bengal. Vol. XXXIII. 1864. Page 489.
(C) A Comperative Grammar of the Modern Aryan Languages of India (Vol. I) :: John Beams, C.S. Introduction. 'On the Hindi Language', Page 31/33.
(D) Journal of the Asiatik Society of Bengal :; Vol. XXXV. Part I, 1866.
Some Objections to the Modern style of Official Hindustani.
-F.S. Growse, P. 172.
(E) Annual Report on the Progress of Education for 1873-74.
(F) Annual Report on the Progress of Education or 1877-78. Director of Public Instruction, N.W.P. and Oudh. Page 83.
44. Marshmans' Guide to the Civil Law, Edition. 1948.
Circular order of the Sudder Dewany Adawlut, N.W.P. No. 303 Dated 19th April, 1839. 218.
45 (a). Court Character and primary Education in the N.W. Provinces & Oudh. 1897, Page 6.
(b) बाबू श्यामसुन्दर दास के निबंधों का संग्रह। पृष्ठ 350।
46. सर्कुलर ऑर्डर ऑफ दि सदर बोर्ड ऑफ रेवेन्यू नार्थ-वेस्टर्न प्रोवीन्सेज, नंबर 3 दिनांक 28 अगस्त, 1840 ई.
Court Character and Primary Education in the N.W.P. & Oudh p. 50/51.
47. Court Character and primary Education in the N.W. Provinces & Oudh Page 4.
48. (क) भारत मित्र : 19 अगस्त, 1882 ई.।
49. (ख) उपरिवत्।
50. (क) पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध में अदालती अक्षर और प्राइमरी शिक्षा (1898 ई.) पृष्ठ 8।
(ख) बाबू श्यामसुन्दर दास के निबन्धों का संग्रह। पृष्ठ 352।



# कवि 'अंचल' जी की याद

**महेन्द्र भटनागर***

उम्र में 'अंचल' जी (रामेश्वर शुक्ल) मुझसे 11 वर्ष बड़े थे। उनसे मेरे प्रेमपूर्ण आत्मीय सम्बन्ध अन्त तक बने रहे। जब भी मिलते थे; बड़ा आदर और स्नेह प्रदान करते थे। सन् 1950 के आसपास की बात है। 'माधव महाविद्यालय', उज्जैन में, कवि-सम्मेलन में 'अंचल' जी आमन्त्रित थे। तत्कालीन हिन्दी-विभागाध्यक्ष श्री गोपाल व्यास ने उनके ठहरने की व्यवस्था की थी। रेलवे-स्टेशन उन्हें लेने भी गए। किन्तु; 'अंचल' जी ने श्री प्रभाकर माचवे के यहाँ जाना चाहा और स्वयं ताँगा कर वहाँ पहुँच गए! हिन्दी-विभागाध्यक्ष और माचवे जी के बीच का तनाव मुझे विदित था। माचवे जी इसी महाविद्यालय में, उन दिनों अंग्रेजी के प्राध्यापक थे। 'अंचल' जी को आमन्त्रित किया गया और उनसे पूछा तक नहीं गया! पर, उन्होंने इसका कोई खास बुरा न माना था। मैं उन दिनों 'आनन्द महाविद्यालय', धार में प्राध्यापक था। उज्जैन आया हुआ था। 'अंचल' जी से मिलने माचवे जी के घर पहुँचा। देखा, बाहर के चबूतरे पर, आसन पर बैठे, 'अंचल' जी दाढ़ी बना रहे हैं। फोटो मैंने देख रखा था; प्रत्यक्ष पहली बार देखा। कुछ पल, 'अंचल' जी ने मेरी ओर दृष्टिपात-भर किया! बस, फिर मैं घर लौट आया।

रात को कवि-सम्मेलन में छिपकर उनका ओजस्वी काव्य-पाठ सुना। छिपकर, इसलिए कि कहीं छात्र व अन्य परिचित श्रोता मुझे देख न लें। कवि-सम्मेलनों में मेरी उपस्थिति-मात्र; श्रोताओं द्वारा मेरे काव्य-पाठ के लिए जबरदस्त आग्रह का कारण बन जाती है। आयोजक आग्रह करते हैं; मित्र व परिचित मेरा नाम बार-बार पुकारते हैं। व्यर्थ असमंजस-दुविधा-कठिनाई में पड़ना पड़ता है। कवि-सम्मेलनों में अथवा किसी के समक्ष काव्य-पाठ करने में सदा संकोचशील रहा हूँ। अन्यथा भी, मुझे अपनी कविताएँ कण्ठस्थ नहीं रहतीं। कुछ कवि, कवि-सम्मेलनों में क्या गजब का प्रदर्शन

* डॉ. महेन्द्र भटनागर, सेवा निवृत्त प्रोफेसर, कवि, लेखक, संपर्क : 110 बलवन्त नगर, गांधी रोड, ग्वालियर-474002; फोन. 0751-4092908

करते हैं। उनके हाव-भाव, अभिनय, वाणी-चातुर्य, वेश-भूषा आदि सब देखते ही बनता है। एक कविता सुनाने की कहो; दस सुनाने लगते हैं। झख मारकर सुननी पड़ती हैं। कवियों का यह रंग-ढंग मुझे बिलकुल भी नहीं भाता। कवि और कविता का यह रिश्ता चूँकि नहीं निभाया, इसलिए, प्रान्त-नगर की बात छोड़िए, अपने इर्द-गिर्द ही अपरिचित बना रहा।

याद नहीं आता, 'अंचल' जी से मेरी प्रथम भेंट कब और कहाँ हुई। माचवे जी से उनके सम्बन्ध में जब-तब बातें होती थीं। 'अंचल' जी के मात्र 19 पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं। 10 जनवरी, 1951 के पूर्व का कोई पत्र मेरे संग्रह में निकला नहीं। 43 वर्ष मेरा उनसे पत्राचार रहा। इन्दौर-उज्जैन में अनेक बार मिलना हुआविश्वविद्यालयीन कार्यों से। अन्यों के समान, 'अंचल' जी के भी अनेक पत्र आज अनुपलब्ध हैं। पत्राचार में पर्याप्त अन्तराल भी रहा। 'अंचल' जी का पहला उपलब्ध पत्र दि. 10 जनवरी, 1951 का है, जब मैं धार में था। और 'अंचल' जी 'रॉबर्टसन कॉलेज', जबलपुर में। इस पत्र से मेरे-उनके पूर्व-पत्राचार का बोध है। 'प्रतिभा-निकेतन' द्वारा आयोजित, कवि सम्मेलन में उन्हें आमन्त्रित किया गया था। इन दिनों पत्र-पत्रिकाओं में मैं खूब लिखता था। 'अंचल' जी भी पर्याप्त प्रभावित थे। वस्तुतः प्रोत्साहन की माँग उनसे मुझे करनी चाहिए थी; लेकिन 'अंचल' जी के पत्रों की टोन शुरू से ही इस प्रकार की रही कि हम अनुज पीढ़ी के रचनाकार उनकी ओर ध्यान दें। 'अंचल' जी को हिन्दी-जगत से अपनी उपेक्षा की शिकायत सदा बनी रही। न जाने क्यों? जबकि अपने जीवन-काल में, हिन्दी काव्यालोचन में वे पर्याप्त चर्चित रहे।

राबर्टसन कॉलेज, जबलपुर
दि. 10.1.51

प्रिय भाई,

तुम्हारा पत्र लम्बी-अति लम्बी प्रतीक्षा के बाद मिला। कितनी खुशी हुई मैं बता नहीं सकता। मेरी इच्छा भी उधर आने की बहुत है। तुम्हारा आमन्त्रण पाकर मैं अवश्य आता। पर, 23 जनवरी को नागपुर में 'रेडियो एडवाइजरी कमेटी' की मिटिंग है। मैं उसका सदस्य हूँ उसमें जाना आवश्यक है। इसलिए इस बार क्षमा करो। कभी गर्मियों की छुट्टियों में कोई आयोजन रखकर बुलाओ तो चार-छह दिन रह भी सकूँ। मैं जानता हूँ, मध्य-भारत में कितने मेरे चाहने वाले प्रेमी पाठक हैं। मुझे वर्ष में दर्जनों पत्र मिलते रहते हैं। मुझे उज्जैन से श्री श्याम परमार का कोई पत्र नहीं मिला। पर, उन्हें भी मुझे विवशतापूर्वक यही उत्तर देना होगा। मेरा एक उपन्यास 'मरु प्रदीप' निकल रहा है। दो कविता-संग्रह भी निकलेंगे। क्या लिखता हूँकैसे लिखता हूँ यह तुम लोग ज्यादा अच्छा समझते हो। इतना अवश्य है कि हिन्दी में नए कवियों में मेरे जैसा उपेक्षित और एकाकी कवि दूसरा नहीं है। न मेरी कोई पार्टी है न कोई पक्ष। लोग तरह-तरह से अपना प्रोपेगण्डा करते हैं। मुझे वह भी नहीं आता। तुम लोग कभी



मेरी ओर आलोचनात्मक दृष्टिपात भी नहीं करते। अपनी एकान्त साधना और समझ के सहारे जो बनता है, लिखता रहता हूँ। यदि तुम्हें कवि-सम्मेलन में न बुलाना होता तो मेरी सुधि भी न लेते। अक्सर तुम्हारे आलोचनात्मक लेख प्रगतिवाद पर या आधुनिक हिन्दी साहित्य पर पत्र-पत्रिकाओं में देखने में आते हैं। पर, उन्हें पढ़कर लगता है जैसे मेरा कोई साहित्यिक अस्तित्व ही नहीं। ये तो दग्ध हृदय के उद्‌गार हैं। अब सिर्फ दो लाइनें लिखकर अपने मनोबल की झलक देता हूँ :

*जीवन की हर हार चुनौती देकर कहती और लगाओ*
*मौन किसी का प्यार चुनौती देकर कहता और मनाओ!*

आशा है, कभी-कभी पत्र देते रहोगे। 'सुमन' की चिट्ठी कल आई है। तुम्हारी कविताओं का मैं पुराना प्रशंसक हूँ। पर कविताएँ आजकल कम क्यों लिख रहे हो? कविता की प्रेरणा का स्रोत सूखने न देना। मेरे योग्य सेवा लिखना।

सस्नेह,
अंचल

'अंचल' जी ने सन् 1954 में प्रकाशित, मेरे एक कविता-संग्रह 'अभिमान' की समीक्षा 'आकाशवाणी-केन्द्र' नागपुर से प्रसारित की थी। उसकी प्रतिलिपि मैंने चाही थी; जो बाद में 'आकाशवाणी-केन्द्र' नागपुर से मुझे प्राप्त हो गई।

जबलपुर
दि. 28.12.51

प्रिय भाई,

पत्र मिला। आशा है, तुम अब सपत्नीक स्वस्थ-सानन्द होगे। नागपुर रेडियो की समीक्षा तुम्हारे पास भेजने के लिए लिख रहा हूँ। आशा है, तुम्हारे निबन्ध का संग्रह निकल रहा होगा। क्या उसमें तुमने 'नया समाज' में छपे मुझ पर अपने लेख को स्थान दिया है? कृपया सूचित करना। *अन्तराल* मुझे बहुत पसन्द आई है। तुम्हारी कविताओं में युग का ओज और तड़प दोनों है। सामाजिक अनुभवों की सशक्त अभिव्यक्ति उनमें मिलती है। भविष्य तुम्हारे जैसे कवियों का ही है।

सस्नेह,
अंचल

'नया समाज' में प्रकाशित जिस लेख का उन्होंने उल्लेख किया है; वह किसी और पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। बाद में मेरी आलोचना-कृति 'आधुनिक साहित्य और कला' (सन् 1956) में समाविष्ट हुआ। सन् 1954 में ही मेरा एक कविता-संग्रह 'अन्तराल' प्रकाशित हुआ; जिसकी भूमिका आचार्य विनयमोहन शर्मा जी ने लिखी। प्रस्तुत पत्र में उसी संग्रह पर 'अंचल' जी ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। अगले

पत्र में, सन् 1956 में प्रकाशित मेरे अन्य कविता-संग्रह 'नई चेतना' पर उत्साहवर्द्धक सम्मति है।

शिवकुटी, नेपियर टाउन, जबलपुर
दि. 14.3.57

प्रियवर,

पत्र मिला।

*नई चेतना* की कविताएँ सचमुच नई चेतना से अनुप्राणित हैं। मौलिकता, रसावेग और स्वस्थ अन्तरस्थ और रूपाभिव्यक्ति का सुखद सौन्दर्य लेकर चलती हैं। हिन्दी के तरुण कवियों में तुम अग्रणी हो। मुझे विश्वास है, तुम्हारी प्रतिभा का उत्तरोत्तर विकास होगा। प्रगति जीवन को सम्पूर्ण बनाने में है, यह तुमने भलीभाँति हृदयंगम कर लिया है। इसीलिए एक नए प्रकार की चिन्तनशीलता तुममें मिलती है।

मेरी आलोचना पुस्तक की बाइंडिग हो रही है। और क्या लिख रहे हो? मेरे योग्य सेवा लेते रहना। तुम्हारे कॉलेज में हिन्दी का अध्यक्ष कौन है? उज्जैन का वि. वि. कब से शुरू होगा।

सस्नेह,

अंचल

इसी प्रकार, निम्नलिखित पत्र में मेरे शोध-प्रबन्ध 'समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द' पर, 'अंचल' जी ने अपना अभिमत अंकित किया :

जबलपुर
दि. 14.10.58

प्रियवर,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरी तबियत ठीक है, पर बिलकुल साफ नहीं है। कुछ कमजोरी दिखती है। न जाने क्यों। उम्र भी तो बेतहाशा आगे बढ़ रही है। अभी कफ का विकार भी पूर्णरूपेण शान्त नहीं है।

सम्मति

'समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द' उच्चकोटि की परिचयात्मक एवं आलोचनात्मक कृति है। प्रेमचन्द के साहित्य की सोद्देश्यता और सामाजिकता पर गहरा विवेचन आपकी पुस्तक में है। विद्वान लेखक ने अपने कुशल अनुशीलन में विषय के समस्त अंगों और पक्षों पर विधिवत् विचार किया है। प्रेमचन्द के साहित्य के छात्रों के लिए यह पुस्तक उपयोगी ही नहीं अनिवार्य है। इसे पढ़ कर प्रेमचन्द के साहित्य की प्रेरणा स्रोतों को भलीभाँति समझा जा सकता है।'

अंचल



मेरे पिता जी का निधन, मेरी अनुपस्थिति में, कोरोनरी थ्रोम्बोसिस से, 59 वर्ष की आयु में दि. 17 जुलाई, 1959 को ग्वालियर में अचानक हो गया था। तब मैं 'माधव महाविद्यालय', उज्जैन में कार्यरत था। 'अंचल' जी को जब सूचना दी तो उनका सम्वेदना-पत्र प्राप्त हुआ :

जबलपुर
दि. 13.08.59

प्रियवर,

मैं तुम्हें पत्र लिखने की सोच रहा था। इधर अरसे से तुम्हारा पत्र नहीं प्राप्त हो रहा था। तुम्हारे पिता जी के देहान्त का दुखद समाचार पाकर अपार दुख हुआ। भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दे। यों तुम्हारे जैसा सुयोग्य पुत्र पाकर कोई भी पिता शान्ति लाभ करेगा। मेरे पिता की भी मृत्यु इसी प्रकार मेरी अनुपस्थिति में हृदय गति रुकने से हुई थी। आज पाँच वर्ष हो गए। तुम्हारे पत्र ने फिर मेरे दुख को जगा दिया। पर क्या किया जाय। सब सहन करना पड़ता है। यही सोच कर सन्तोष करो कि एक न एक दिन प्रत्येक को पितृहीन होना पड़ता है। बहन के लिए भटनागर लड़के की जिद मत करो। कोई सुयोग्य कायस्थ लड़का मिले तो विवाह कर दो। डॉ. रामलाल सिंह जिस पद पर हैं उस पर तुम भी तो हो सकते थे। क्या apply नहीं किया था? मुझे तुम्हारा पूरा ख्याल है और जब-जब जो हो सकेगा तुम्हारे लिए करूँगा। बैठक नवम्बर तक होगी। अपने मन को कठोर और सबल बनाकर कर्तव्य पालन में जुट जाओ। ईश्वर तुम्हें पिता का वियोग सहन करने की शक्ति दे। पत्र देते रहना।

तुम्हारा,
अंचल

चूँकि लगभग छह-माह तक मेरा कोई पत्र 'अंचल' जी को नहीं मिला; एतदर्थ उन्होंने 24 फरवरी, 1960 को मुझे एक पत्र लिखा, महज मेरे समाचार जानने के उद्देश्य से। डी.लिट्. का काम शुरू किया ही था। त्रैमासिक पत्रिका 'प्रतिकल्पा' बन्द हो चुकी थी'हिन्दी कविता : 1958' विशेषांक निकलने के बाद। कभी-कभी ऐसे आत्मीय पत्र बड़ी राहत पहुँचाते हैं:

शिवकुटी, नेपियर टाउन,
जबलपुर
दि. 24.2.60

परम प्रिय,

आशा है, तुम सानन्द हो। इधर बहुत दिनों से तुम्हारा कोई समाचार नहीं मिला। क्या डी.लिट्. के काम में बहुत लीन हो? कहाँ तक काम आगे बढ़ा। मुझे सूचित करना... 'प्रतिकल्पा' क्या बन्द हो गई? तुम कहाँ होयूनीवर्सिटी सर्विस में या

सरकारी नौकरी स्वरूप माधव कॉलेज में। और अपने यहाँ के समाचार देना। तुम कुछ नाराज हो क्या? पत्र क्यों नहीं लिखते? तुमसे मिलने की इच्छा बीच-बीच में बराबर होती रहती है, पर उज्जैन आने का कोई सुयोग नहीं मिलता। नए बोर्ड की नई हिन्दी कमेटी में मैं नहीं आ पाया। संसार में मेरे समर्थकों की अपेक्षा विरोधी ही अधिक हैं। खैर, जो है वही बहुत है। तुम्हारी कविता 'अगहन की रात', 'आदर्श' के जनवरी के अंक में पढ़ी। खूब अच्छी लगी। तुम्हारे यहाँ वी.सी. कौन हो रहा है? माधव कॉलेज में हिन्दी-विभागाध्यक्ष कौन है? उज्जैन का कोई अवसर मुझे मिलता ही नहीं। भोपाल तो बराबर जाना होता रहता है। अपने नगर के साहित्यिक समाचार लिखना।

सस्नेह,
अंचल

'अंचल' जी के एक लेख 'हिन्दी कहानी' ('रेखा-लेखा' में संग्रहीत) को अपनी एक सम्पादित पुस्तक में शामिल करना चाहता था। प्रकाशन-अनुमति के लिए लिखा; तुरन्त उनकी स्वीकृति मिली। 'अंचल'जी ने सदा खुले दिल से मुझे सहयोग किया। मेरे प्रति लेन-देन की कोई भावना उनके मन में नहीं रही।

प्राचार्य,
शासकीय स्नातक महाविद्यालय, रायगढ़
दि. 14.12.63

प्रियवर,

नमस्कार। तुम्हारा पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है। मैं तो समझा कि मुझे भूल गए हो। ग्वालियर भी मेरा कभी आना नहीं हो पाया जो तुमसे मिलने का सुयोग मिलता।

ताजे समाचार कुछ नहीं हैं। यहाँ एक कोने में पड़ा समय काट रहा हूँ। रायपुर विश्वविद्यालय जुलाई से खुल गया है। हिन्दी विभागाध्यक्ष भी मैं ही बनूँगा। पर, अभी वहाँ टीचिंग डिपार्टमेण्ट्स नहीं खुलेंगे। तुम्हारे यहाँ ग्वालियर यूनिवर्सिटी भी तो जुलाई से खुल जाएगी।...तुमसे मिले भी एक युग हो गया। नया कविता-संग्रह प्रकाशित हो रहा है, जो यथासमय तुम्हें मिलेगा। तुम 'रेखा-लेखा' में से मेरे लेख हिन्दी कहानी का संक्षेप ले लो। मेरे लायक सेवा लिखना। 29 को इन्दौर रहूँगा। रेडियो कवि-सम्मेलन है। आशा है, सपरिवार सानन्द हो। पत्र-पत्रिकाओं में कभी-कभी तुम्हारी रचनाएँ देखने को मिलती हैं, पर कम। क्यों?

सस्नेह,
अंचल

'सेतु प्रकाशन', झाँसी से 'कविश्री माला' का प्रकाशन पुनः शुरू हुआ। प्रकाशक ने इस 'माला' का संयोजक डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' (उज्जैन) को



बनाया। 'सुमन' जी ने 'कविश्री : अंचल' का सम्पादन-दायित्व मुझे सौंपा। इस सन्दर्भ में, 'अंचल' जी से पत्र-व्यवहार किया। 'अंचल' जी का भरूपर सहयोग मिला :

प्राचार्य,
महाकोशल कला महाविद्यालय, जबलपुर
दि. 30.8.68

परम प्रिय,

तुम्हारा पत्र मिला। अपनी 25-26 कविताएँ, सब प्रकार की, सब रचनाकालों की समेटकर भेज रहा हूँ। आशा है, इनसे 'कविश्री : अंचल' संग्रह बन जाएगा। यदि और कविताएँ चाहिए या आप और चयन करना चाहें तो कुछ और भेज दूँगा। आप अब संग्रह की पाण्डुलिपि बनाकर अविलंब प्रकाशक को भेज दीजिए। और क्या करना है यह भी लिखिएगा।

हमारे यहाँ परीक्षकों का चयन अक्टूबर में होगा। आपका मुझे पूरा ध्यान है। यथाशक्ति आपके मन के अनुरूप कार्य होगा। नर्मदा प्रसाद जी खरे को आप स्वयं पत्र लिखिए। मेरी ही न जाने कितनी रॉयल्टी मुझे वे नहीं दे रहे हैं। मैंने उनसे इस सम्बन्ध में बात करना छोड़ दिया है। आप सीधे कड़ाई के साथ लिखेंगे तो कार्य हो जाएगा। 'फोट्टी पोइम्स' का आदेश भेजा जा रहा है।

'कविश्री' के लिए मेरी भेजी रचनाएँ यदि अधिक हों तो आप ही इनमें से 1000 पंक्तियों को छाँटकर अब यह कार्य अविलम्ब कर डालिए। और मेरे योग्य जो कार्य हो लिखिए। आप प्रोफेसर कब हो रहे हैं? अभी तो कुमारी भारती शर्मा और प्रमोद वर्मा की सम्भावनाएँ व्यक्त की जा रही हैं। कुछ चेष्टा करो प्यारे भाई! घर में बैठे रहने से कार्य न होगा।

आशा है, बहू का स्वास्थ्य अब सुधार पर होगा।
शुभेच्छु, अंचल

मध्य प्रदेश के प्रसिद्ध साहित्यकार-पत्रकार श्री नर्मदा प्रसाद खरे, प्रकाशक (लोक चेतना प्रकाशन) भी थे। मेरे मित्र थे। उनको मैंने दो-तीन पाठ्य-पुस्तकें/छात्रोपयोगी पुस्तकें सम्पादित करके दीं; जो उन्होंने प्रकाशित कीं। रॉयल्टी भी देते रहे। बाद में कुछ कठिनाई हुई। शिकायत के तौर पर नहीं; मात्र मैत्री-भाव से 'अंचल' जी को लिखा था कि वे खरे जी से कहें कि वे मुझे रॉयल्टी नियमित भेजें।

'अंचल' जी को मेरी पदोन्नति का ख्याल भी रहा। प्रयत्न-हेतु समय-समय पर वे मुझे उत्साहित व सक्रिय करते रहे।

'कविश्री : अंचल' का काम समाप्ति पर था। पूर्व में, 'अंचल' जी के काव्य पर जो लेख लिखा था'अंचल' के काव्य में प्रगतिशील तत्त्वउसी को परिवर्द्धित करक
'कविश्री : अंचल' की भूमिका का स्वरूप प्रदान किया। प्रामाणिक संक्षिप्त जीवन-परिचय

की आवश्यकता थी। अतः 'अंचल' जी को पत्र भेजा। उत्तर-पत्र में, 'अंचल' जी ने पुनः अपने असन्तोष और आर्थिक अभावों को आवेशपूर्ण-भावुकतापूर्ण शैली में व्यक्त किया :

प्राचार्य
महाकोशल कला महाविद्यालय, जबलपुर
दि. 14.10.68

प्रियवर,

आपका कृपा पत्र मिला। मैं परसों भोपाल से लौटा...

'कविश्री' के लिए मेरा संक्षिप्त परिचय आप ही लिख डालिए। राजपाल के प्रकाशन 'लोकप्रिय कवि : अंचल' और सम्मेलन के प्रकाशन 'आधुनिक कवि : अंचल' की भूमिकाओं में आपको सब सामग्री मिल जाएगी। इधर-उधर के काव्य-संकलनों में भी। सन् 1915 की 1 मई को जन्म किशनपुर (जिला फतेहपुर, यू.पी. में) और अब तो मेरे आत्म-संस्मरणों में भी प्राप्त है।

मेरा जीवन तो अभावों, हीनताओं और कुण्ठाओं का जीवन है। पिछले 36 वर्षों से अविराम गति से आन्तरिक सच्चाई और जीवन की पूरी ईमानदारी के साथ...रहा हूँ। पर, कहने के लिए देश के किसी कोने में झोंपड़ी तक नहीं है, यद्यपि देश के प्रत्येक छोर में पढ़ा जाता हूँ। मैं समझता हूँ भाग्य का ही दोष है। सकल पदारथ है जग माहीं, भाग्य हीन नर पावत नाहीं। शासकीय सेवा से अवकाश लेने का समय आ गया है, पर भविष्य अन्धकार विजड़ित है।

शुभेच्छु, अंचल

सन् 1969 लग चुका था। 'कविश्री : अंचल' का प्रकाशन प्रतीक्षित था। नव-वर्ष की बधाई/शुभकामनाओं के पत्र में 'अंचल जी ने 'कविश्री : अंचल' के प्रकाशन-विलम्ब के सम्बन्ध में जानना चाहा :

दि. 7.1.69

प्रियवर,

नमस्कार। नए वर्ष की बधाई का पत्र मिला। ईश्वर आपको भी सुखी सम्पन्न करे और नया वर्ष आपके लिए हर प्रकार सुख, समृद्धिकारी और मंगलकारी हो। 'कविश्री : अंचल' का मुद्रण और प्रकाशन अब अविलम्ब होना चाहिए। आप उन्हें लिखकर जल्दी करने के लिए कहिए। आखिर इतनी देर क्यों हो रही है?

'अंचल : व्यक्ति और साहित्य' के लिए आप अपना लेख अब मेरे पास ही भेज दीजिए। पर, यथाशीघ्र। पुस्तक प्रेस में जाने वाली है। यहाँ सब समाचार ठीक है। ... कभी-कभी इसी प्रकार पत्र देते रहिए।



आशा है, बहू जी का स्वास्थ्य अब ठीक होगा।...हिन्दी में पदोन्नतियाँ होने वाली हैं। आप अपने लिए चेष्टा कीजिए।

शुभेच्छु, अंचल

'अंचल : व्यक्ति और साहित्य' नामक सहयोगी लेखन की एक आलोचना-पुस्तक भी उन दिनों तैयार हो रही थी। किन्तु; इसके लिए पृथक् से कोई और आलोचनात्मक लेख मैं नहीं लिख सका।

25 अप्रैल, '69 के पत्र में 'अंचल जी' ने पुनः 'कविश्री' के प्रकाशन की चर्चा की। भूमिका का प्रारूप उन्हें अवलोकनार्थ भेज दिया था; उस पर अपनी प्रतिक्रिया भी उन्होंने व्यक्त की :

महाकोशल कला महाविद्यालय,
जबलपुर
दि. 25.4.69

प्रियवर,

तुम्हारे पत्र का उत्तर बहुत देर में दे पा रहा हूँ। क्षमा करना। 9 अप्रैल से छात्र-आन्दोलन के कारण हमारा विश्वविद्यालय बन्द हो गया है और परीक्षाएँ अधूरी स्थगित पड़ी हैं।...'कविश्री' की छपाई के लिए कृपया सेतु-प्रकाशन कोसुमित्रानन्दन गुप्त को आप ही पत्र लिखें तो अच्छा। आपने अपनी भूमिका का जो प्रारूप मुझे भेजा है मैंने पसन्द तो किया है पर मुझे लगता है मेरे साथ न्याय नहीं हो पाया है। आप तो मेरे अत्यन्त आत्मीय हैं। अनुजवत। स्वच्छन्दतावाद और उसमें उभरना था। जिन दिनों वह प्रारूप मुझे मिला था उन दिनों मैं अपनी पुत्री के विवाह के उपक्रमों में लगा था। आपको लिख न पाया। यदि आप उचित समझें तो मेरे साथ न्याय करें।

कृपया सुमित्रानन्दन गुप्त जी को लिखकर पूछिए कि आखिर देर क्यों कर रहे हैं।

मैंने हिन्दी कविता को अपने कथ्य और शिल्प दोनों से सँवारा है।

आशा है, बहू का स्वास्थ्य बिलकुल ठीक होगा। क्या 10-11-12 को इन्दौर आयोजन में रहोगे। सम्भव है मैं आऊँ।

शुभचिन्तक, अंचल

'अंचल' जी, 'विक्रम विश्वविद्यालय', उज्जैन के 'हिन्दी अध्ययन मण्डल' के बाह्य विशेषज्ञ सदस्य थे। 'अध्ययन-मण्डल' की बैठकों में भाग लेने उज्जैन आते थे। इन दिनों, मैं 'शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय', मंदसौर में हिन्दी-विभाग का प्रोफेसर अध्यक्ष था। 'अध्ययन-मण्डल' का वरिष्ठ सदस्य होने के नाते मैं भी बैठकों में भाग लेने, मंदसौर से उज्जैन आता था। तब 'अंचल' जी और 'अध्ययन-मण्डल' के अध्यक्ष आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी के सम्बन्धों में तनाव देखने में आया :

प्राचार्य, प्रोफेसर-अध्यक्ष-हिन्दी,
अधिष्ठाता : कला-संकाय, जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर
दि. 30.9.1972

प्रिय भाई,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे तुम्हारी सम्मेलन-सम्बन्धी बात का स्मरण है। सम्भवतः मैं अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में इलाहाबाद जाऊँगा। तभी बात कर लूँगा।

25.9.72 को 'हिन्दी परीक्षा समिति' की तुम्हारे यहाँ की बैठक में क्या हुआ, इसका मुझे पता नहीं। परन्तु मैं बिना किसी बात की चिन्ता किए सही और सच्ची बात कहता रहूँगा। साथ ही विभागाध्यक्ष ने हम लोगों के प्रति जिस प्रकार की उपेक्षा की नीति अपनाई है उसका भी मैं समर्थन नहीं कर सकता। उत्तर प्रदेश और बिहार के लोगों को इतनी बड़ी तादाद में परीक्षक बनाए जाने का कोई औचित्य नहीं जबकि मध्य प्रदेश के 8 विश्वविद्यालयों और दर्जनों श्रेष्ठ महाविद्यालयों में एक से एक सुयोग्य अध्यापक पड़े हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. सुमन को भी लिख रहा हूँ। 6 की फेकल्टी की मीटिंग में तुम्हारा भी कर्तव्य हो जाता है कि हिन्दी अध्ययन परिषद के निर्णयों को असम्मानित न होने दो। मेरा खुला आरोप है कि विभागाध्यक्ष मेरे प्रति उदार और न्यायशील नहीं रह पाते हैं। खैर।

तुम्हारी ख्याति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़े इससे बढ़कर मेरे लिए हर्ष की बात क्या होगी! 'ज्यों बड़ी आँखियाँ निरख, अँखियन को सुख होत' वाली उक्ति किसी अन्य साहित्यिक पर चाहे चरितार्थ न होती हो पर मुझ पर सोलहों आने घटित होती है। तुम सबका सम्मान-अभिनन्दन मुझे अपना ही उत्कर्ष लगता है। तुम्हारी साहित्य सेवा तो सर्वविदित है और आज तुम्हारी गिनती वरिष्ठ साहित्य साधकों में होती है। इस दिशा में मेरे योग्य जब जो योगदान हो मैं उसके लिए सदैव उत्सुक रहता हूँ।

शुभेच्छु
(रामेश्वर शुक्ल 'अंचल')

सह-परीक्षकों की नियुक्तियों को लेकर, 'अंचल' जी का इतना उत्तेजित हो जाना; समझ में नहीं आया। लगता है, किसी ने उन्हें गुमराह किया।

इस पत्र में मेरी प्रशंसा में, पूरा एक अनुच्छेद है। मुझसे वे अनेक अपेक्षाएँ रखते थे; लेकिन प्रजातान्त्रिक युग में, सब मात्र अपनी इच्छानुकूल सम्पन्न हो पाना सम्भव नहीं हो सकता।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी के सेवानिवृत्त होने पर, दि. 19 अक्टूबर, 1973 को मैं 'विक्रम विश्वविद्यालय' के 'हिन्दी अध्ययन मण्डल' का अध्यक्ष मनोनीत हुआ'अध्ययन मण्डल' में वरिष्ठतम प्रोफेसर-सदस्य होने के कारण। 'अंचल' जी ने बधाई दी; अपनी प्रसन्नता प्रकट की :



Joint Director, Collegiate Education'
1/3 Vidya Bihar, Bhopal
Dt. 31.10.73

प्रियवर,

यह जानकर कि आप हिन्दी अध्ययन बोर्ड के अध्यक्ष हुए हैं अपार प्रसन्नता हुई। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए। ईश्वर करे आप पूर्णकाल तक यह पद ग्रहण किए रहें। मुझ पर कृपा बनाए रखिएगा। अधिक क्या लिखें। अब तो आप जैसे स्नेहियों का ही सहारा है।

भोपाल आएँ तो दर्शन अवश्य दें।...दीपावली की शुभकामनाएँ स्वीकार कीजिए। आप अधिकाधिक यशस्वी हों।

शुभेच्छु, अंचल

नव-वर्ष (सन् 1975) पर 'अंचल' जी का बधाई/शुभकामना पत्र मिला। अच्छा लगा। इस पत्र में उन्होंने अपनी आर्थिक विपन्नता का विशेष उल्लेख किया है। डॉ. बालकृष्णराव और डॉ. गोविन्द रजनीश के सम्पादन में छायावादोत्तर काव्य-संकलन 'उपलब्धि' का, 'रंजन प्रकाशन', आगरा से प्रकाशन हुआ थाएम.ए. आधुनिक काव्य के प्रश्न-पत्र में पाठ्य-संकलन के रूप में निर्धारण हेतु। इसमें एक कवि 'अंचल' जी भी थे; मैं भी था। उन्हें मानदेय नहीं पहुँचा था। पता नहीं, किसने उन्हें बताया कि 'उपलब्धि' के प्रकाशन में मेरी प्रेरणा प्रमुख थी। वस्तुतः 'उपलब्धि' मध्य प्रदेश के समस्त विश्वविद्यालयों को ध्यान में रखकर सम्पादित की गई थी; इस कारण उसमें मध्य प्रदेश के कवियों को विशेष स्थान दिया गया। मानदेय तो 'अंचल' जी को मिला होगा; जबकि मुझे काफी पहले मिल चुका था :

साउथ सिविल लाइंस,
पचपेड़ी, जबलपुर
दि. 13.1.75

प्रियवर,

नव वर्ष की बधाई और शुभकामनाएँ स्वीकार करो। खूब फलो-फूलो और यशस्वी हो।

मैं अब हर तरह से सेवानिवृत्त होकर जबलपुर में पड़ा हूँ। तुम लोगों की सहायता चाहता हूँ। आर्थिक तनाव छाया हुआ है। 'उपलब्धि' के प्रकाशक को लिखकर या डॉ. गोविन्द रजनीश को लिखकर उसमें सम्मिलित मेरी चार कविताओं की मानदेय राशि भिजवा दो। मैंने सुना है 'उपलब्धि' के प्रकाशन के पीछे तुम्हारी प्रेरणा प्रमुख थी। मैंने गोविन्द रजनीश को दो-तीन पत्र लिखे। एक सप्ताह पहले

प्रकाशक को भी लिखा है। पर अभी तक कुछ हुआ नहीं। और अधिक क्या लिखूँ। मुझे भुला मत देना। जीवन के चौथेपन में फिर एक बार बेकारी का शिकार हुआ हूँ। परीक्षण-कार्य के रूप में या अन्य जिस विधि चाहो सहायता करो। तुम आज समर्थ हो। कुछ-न-कुछ कर ही सकते हो। विशेष क्या लिखूँ। बच्चों को शुभाशीष। इधर कविताएँ कहाँ लिख रहे हो। देखने में नहीं आईं।

शुभेच्छु,
अंचल

दि. 1 जुलाई, 1978 को अपने गृह-नगर ग्वालियर आ चुका था'कमलाराजा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय' में प्रोफेसर अध्यक्ष। यहाँ 'जीवाजी विश्वविद्यालय' में 20 अक्टूबर, 1980 को 'हिन्दी अध्ययन मण्डल' का अध्यक्ष मनोनीत हुआ। 'अंचल' जी को अपने विश्वविद्यालय से, परीक्षा सम्बन्धी कार्य भेजा, उन्हें सूचित किया। इस प्रसंग से सम्बद्ध उनका दि. 17 मार्च, 1981 का पत्र मेरे पास है :

दक्षिण सिविल लाइंन,
पचपेड़ी, जबलपुर, दि. 17.3.81

प्रियवर,

आपका कृपापत्र मिला। प्रसन्नता हुई। मैं तो समझा था आप मुझे भूल चुके हैंअब मैं अवकाश प्राप्त होने के कारण आपके किसी मसरफ का नहीं रहा हूँ। पर आप बड़े दयालु हैं। मेरी सुधि आपको बनी रही। ग्वालियर विश्वविद्यालय से अभी कोई सूचना नहीं आई। आवेगी तो आपकी देन मान कर स्वीकार करूँगा। अच्छा था आप मुझे आने का अवसर देतेमैं इधर चार वर्षों से वहाँ नहीं आ पाया। बहुत से मित्रों से भेंट हो जाती। आपको बता दूँ मैं रविशंकर वि.वि. की रिसर्च डिग्री कमेटी का बाह्य-विशेषज्ञ सदस्य हूँ। कोई पी-एच.डी. की थीसिस हो सके तो भिजवाइए। न हो सके तो जाने दीजिए। मेरा लेखन कार्य सन्तोष के लिए काफी है। मुझे तो आपका ध्यान है और रहेगा। आप 55 के हो गए हैं तो 58 के भी हो जाएँगे। पर आपके पास इतना धनसंचय है कि आपको मेरी तरह हर महीने कुआँ खोदना और हर महीने पानी पीना नहीं पड़ेगा। भगवान करे मेरी जैसी गति किसी की न हो। आप सब निश्चिन्त और सानन्द रहें। मैं तो... आपको दे सका हूँ।

'लोक-चेतना' का पता हैकछियाना रोड, जबलपुर। मैं उन लोगों से बात नहीं करता। स्व. खरे जी मेरा इतना पैसा हजम कर चुके हैं कि उसी कारण मैं ये दिन देख रहा हूँ। आप उन्हें सीधे पत्र लिखें यदि आप रॉयल्टी वसूल कर लेंगे तो मैं आपको साधुवाद दूँगा। इस बार सम्मेलन में तीन साल वाला नियम नामों को निरस्त कर देगा। आपका नाम प्रभात जी को ज्ञात है। आपके पद-प्रतिष्ठा के अनुरूप आपको



प्रश्न-पत्र अवश्य प्राप्त होगा। अभी तक इसी बाध्यता के कारण यह काम नहीं हुआ। क्षमा करें। स्वास्थ्य पर ध्यान दें। आशा है, बहू स्वस्थ होंगी। बच्चों को शुभाशीष।

सदैव-सा
अंचल

अपना लेखन कर्म जारी रखिए। अन्त में वही काम आएगा। यह अध्यक्षता और स्वार्थों का आदान-प्रदान चंद रोजा है। मैं भोग चुका हूँ। जानता हूँ। आपको मिले एक युग हो गया। पता नहीं आपकी कभी इच्छा हम जैसे असमर्थ पर हार्दिक स्नेही मित्रों से मिलने की होती भी है या नहीं। पर मैं तो आप सबसे मिलने को सदैव उत्सुक-व्यग्र रहता हूँ। आप चाहें तो अवसर प्रदान कर सकते हैं। यदि मेरी कोई बात अच्छी न लगे तो अनुज होकर हम बड़ेन की तरह क्षमा को उचित मानना।

हर महीने कुआँ खोदने और हर महीने पानी पीने की बात; उनकी पूर्व मनः स्थिति को ही दर्शाती है। मुझे तो 'अंचल' जी के अन्तरंग जीवन का ज्ञान नहीं है। आर्थिक दृष्टि से वे इतने विपन्न क्यों और कैसे? स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्य-पद (सर्वोच्च पद) पर रहे; महाविद्यालयीन शिक्षा के संयुक्त संचालक रहे। यह एक मनोविज्ञान है; हर व्यक्ति दूसरे को धनवान प्रचारित करता है और अपने को अर्थाभाव-ग्रस्त। कह नहीं सकते : 'अंचल' जी के सन्दर्भ में वास्तविकता क्या थी।

श्री नर्मदाप्रसाद खरे के दिवंगत हो जाने के बाद उनके पुत्र विकास खरे ने 'लोक चेतना प्रकाशन' का दायित्व सँभाला था। पत्रोत्तर न मिलने से क्षुब्ध था। सोचा, शायद श्री विकास खरे तक मेरे पत्र नहीं पहुँच पा रहे हैं। अतः 'अंचल' जी से उनका पता जरा विस्तार से जानना चाहा। स्व. श्री नर्मदाप्रसाद खरे और श्री विकास खरे ने मेरी कृतियों की रॉयल्टी का भुगतान नहीं कियाऐसा नहीं है। मात्र एक सम्पादित पुस्तक 'साहित्यिक निबन्ध' का प्रकरण था। और बड़े व नामी प्रकाशकों ने; अनुबन्ध-पत्र होते हुए भी रॉयल्टी नहीं दी या मात्र-दो एक वर्ष देकर बन्द कर दी। 'लोक-शिक्षण संचालनालय' मध्य प्रदेश, भोपाल ने 'साहित्यिक निबन्ध' की 100 प्रतियाँ क्रय की थीं (1982-83)। इन पर पुस्तक के स्वत्वाधिकारी को 20 प्रतिशत रॉयल्टी देनी अनिवार्य थी; लेकिन 'लोक चेतना प्रकाशन' ने मुझे नहीं दी। 'लोक शिक्षण संचालनालय' के संचालक को लिखा भी; किन्तु कोई उत्तर नहीं! अब कौन कितना झगड़ता! कितना समय नष्ट करता! प्रकाशन को नोटिस देता; अखबार में शिकायती समाचार देता। विवश, आर्थिक क्षति सहन कर ली।

सियारामशरण गुप्त जी के जीवन और साहित्य पर एक सम्पादित ग्रन्थ तैयार करने का दायित्व, 'सेतु प्रकाशन' के मालिक श्री सुमित्रानन्दन गुप्त ने मुझे सौंपा था। अतः मैंने अनेक सहयोगी लेखकों को पत्र भेजे। 'अंचल' जी को भी लिखा। लेकिन, श्री सुमित्रानन्दन गुप्त जी के निधन के कारण इस योजना का कार्यान्वयन सम्भव नहीं हो सका।

जबलपुर
दि. 6.5.81

प्रियवर,

आपका 16/4 का पत्र मिला। औपचारिक ही सही पर उसने मुझे हर्षित किया। आपको अब भी मेरी याद बनी है यह मेरे लिए कम प्रसन्नता की बात नहीं है। कृपा बनाए रहिए।

सियारामशरण गुप्त स्मृति-ग्रन्थ के लिए मैं आपको एक मर्मस्पर्शी संस्मरण दूँगा। कहीं लिखा पड़ा है। ढूँढ़कर नकल करने के बाद आपको भेज देना है। इधर 20 तक उत्तर पुस्तिकाओं का झमेला है। किसी को दे न सकने की स्थिति में होते हुए भी 6-7 विश्वविद्यालय भेज ही देते हैं। 6-7 थीसिस भी वर्ष भर में आ जाती हैं। उसके बाद 25 को पटना जाना है। मैं 20 और 25 के बीच में अपना लेख भेजूँगा। बड़ी पुरानी और आन्तरिक यादों से गुँथा हुआ। आप पढ़कर भावाभिभूत हो जाएँगे। कृपया इस पत्र की पहुँच लिखिएगा। यों आप भी इस समय उत्तर पुस्तकों की भीषण व्यस्तता में होंगे। पर अवकाश निकालिएगा।

मैं दिसम्बर में ग्वालियर गया था। दो दिन रहा। आप वहाँ हैं यह पता होता तो अवश्य मिलता। श्रीमती रमा दीक्षित का वायवा लेना था। अब तो आप भी शासकीय सेवा से अवकाश ले रहे होंगे। मई में मुजफ्फरपुर में डॉ. सियारामशरण प्रसाद आपकी चर्चा कर रहे थे। आशा है, पत्नी बच्चे सभी मजे में होंगे। सबको मेरा स्नेहाशीष।

शुभेच्छु,
अंचल

सेवानिवृत्ति-बाद, 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली' द्वारा स्वीकृत एक शोध-परियोजना को पूर्ण करने में व्यस्त रहा। विषय था'प्रेमचन्द के कथा पात्र : सामाजिक स्तर और उनकी मानसिकता'। प्रेमचन्द के उपन्यासों पर मेरा पी-एच. डी. का शोध-कार्य था'समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द।' 'अंचल' जी ने इस पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की :

जबलपुर
दि. 26.10.86

प्रियवर,

कृपा पत्र मिला। आप अवकाश-प्राप्ति (सेवानिवृत्ति) के बाद यू.जी.सी. की परियोजना से लग गए हैं, बधाई हो। भगवान करे 10-12 साल आगे भी इसी तरह लगते रहें। आपने जो-जो काम लिखे हैं, करने की कोशिश करूँगा। वैसे मैं कितना



अकिंचन हूँ यह आप भलीभाँति जानते हैं, वरना पिछले दस वर्षों में कभी तो इस उपेक्षित की याद करते। खैर अब सही। शेष स्नेह।

शुभेच्छु,
अंचल

स्वयं को पीड़ित समझने का 'अंचल' जी का मनोविज्ञान था'पिछले दस वर्षों की बात लिख गए; जबकि उनका पूर्व-पत्र ही दि. 6 मई 1981 का है। पत्राचार इस बीच भी हुआ होगा; किन्तु मेरे पास वे पत्र सुरक्षित नहीं।

'अंचल' जी 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद' के एक सम्मानित पदाधिकारी थे। लेकिन उनके माध्यम से भी मैं 'सम्मेलन' से जुड़ न सका।

जबलपुर
दि. 6.10.89

प्रियवर,

पत्र मिला। सम्मेलन का प्रकाशन कार्य फिलहाल बन्द है। समय आने पर देखेंगे। एक साल लग जाएगा।

सेवानिवृत्त तो सभी होते हैं। लेकिन उससे लेखन की नई शक्ति ग्रहण करनी होती है। मुझे तो यू.जी.सी. अन्वेषण कार्य भी नहीं मिला। पर जिए जा रहा हूँ। लिखना-पढ़ना भी पूर्ववत जारी है। आज बम्बई दूरदर्शन के कवि सम्मेलन में भाग लेने जा रहा हूँ। शेष स्नेह।

शुभेच्छु
अंचल

(श्री प्रभात शास्त्री जी ने व्यवस्था की भी; किन्तु कार्यालय ने उसका निर्वाह नहीं किया। फिर, और पीछे मैं पड़ा नहीं :

हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद
दि. 17.7.1984

प्रिय, महेन्द्र भटनागर जी,

सप्रेम नमस्कार। आपका पत्र प्राप्त हुआ। 'राष्ट्रभाषा सन्देश' एवं सम्मेलन पत्रिका' के लिए आपका संशोधित पता अंकित करा दिया गया है। समीक्षार्थ नए प्रकाशन भी आपकी सेवा में भेज दिए जाएँगे।

'आधुनिक कवि माला' में अब तक 21 कवियों की कविताओं के संकलन प्रकाशित हुए हैं। सम्प्रति सम्मेलन की हीरक जयन्ती सम्बन्धी प्रकाशन योजना को

प्राथमिकता दी जा रही है। आपका सहयोग सम्मेलन को प्राप्त होता रहे, इसकी अभिलाषा है।

संलग्न परिपत्रानुसार अपना हीरक जयन्ती उत्सव सम्पन्न करने के लिए प्रयत्नशील है। आप राष्ट्रभाषा के किसी अछूते पहलू पर अपना सारगर्भित लेख स्मारिका के निमित्त भेजने की कृपा करें। आपके सुझाव भी हमारा मार्गदर्शन करेंगे। शुभकामना सहित-

भवदीय,
प्रभात शास्त्री
(प्रधानमन्त्री)

इधर, श्री कृष्णचन्द्र बेरी जी ने 'अंचल-समग्र' को प्रकाशित करने का संकल्प किया। विज्ञापन छपा। एक खण्ड पत्रों का भी था। 'अंचल' जी के जो पत्र मेरे पास थे; सोचा 'समग्र' में वे भी छपें। अतः 'अंचल' जी से पूछा। उनकी स्वीकृति तत्काल प्राप्त हुई :

जबलपुर
दि. 17.02.94

प्रियवर,

नमस्कार। कृपा पत्र मिला। समग्र में पत्रों का खण्ड रहेगा। मेरे जो पत्र आपके पास हैं भेज दीजिए। उपयोग हो जाएगा। समग्र का पहला खण्ड (काव्य) लगभग 800-900 पृष्ठ का मार्च में रिलीज होगा। कुल चार खण्ड रहेंगेलगभग 900 पृष्ठ का एक-एक होगा। मूल्य 70 या 75 रुपए रखा जाएगा। रंगीन कवर कलकत्ता से छपकर आ जाता तो फरवरी में ही निकल जाता। शेष... पत्रादि दूसरे खण्ड में रहेंगे। कृपा बनाए रहें।

शुभेच्छु
अंचल

किसे पता था, 'अंचल' जी का यह अन्तिम पत्र होगा! अलविदा!



# भ्रष्टाचार निवारण आयोग क्यों?

**ब्रजेन्द्र प्रताप गौतम***

स्वाधीनता प्राप्ति के कुछ वर्षोंपरांत ही भ्रष्टाचार की घटनाएँ घटित होती रहीं। उस समय भी कोई कारगर हल नहीं निकाला गया। परिणाम यह हुआ कि तीन दशकों में ही काला धन बढ़ता गया और उस काले धन का दुरुपयोग विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक रूप से होने लगा। शासन द्वारा दबाव में आकर समय समय पर समितियाँ गठित की गईं परन्तु फिर भी कोई ठोस परिणाम नहीं निकल पाए। अतः आते-आते 2010 का वर्ष घोटालों का वर्ष कहा जाने लगा। लगातार एक के बाद एक गम्भीर घोटाले सामने आते रहे। इन घोटालों में आदर्श अपार्टमेंट घोटाला मुम्बई, राष्ट्रमण्डल खेल, 2 जी स्पेक्ट्रम, अनाज घोटाला और गुड़गाँव बैंक घोटाला आदि काफी चर्चित रहे। इस प्रकार भ्रष्टाचार के चक्रव्यूह में तथाकथित सुसंस्कृत सभ्य वर्ग जिसमें विधायक, कार्यपालिका, न्यायपालिका, कॉर्पोरेट्स और मीडिया बुरी तरह फँसे हुए हैं। लोगों ने अब खुलकर कहना प्रारम्भ कर दिया है कि भ्रष्टाचार हमारे रक्त में सम्मिलित हो चुका है और अब कोई व्यवस्था इसका इलाज नहीं कर सकती। 2 जी स्पेक्ट्रम घोटाला जिसके उजागर होने पर शीतकालीन सत्र में विरोधी पक्ष ने एक स्वर से जे.पी.सी की माँग के गठन पर जोर देती रही, दूसरी ओर सत्ता पक्ष ने विपक्ष की इस माँग को अस्वीकार कर इसको और भी मुख्य बनाने में पहल की। परिणाम यह रहा कि संसद के दोनों सदन प्रतिदिन स्थगित होते रहे। इस प्रकार शीतकालीन सत्र इसी शोरगुल और 'हंगामे' में गुजर गया। जनता के खून पसीने की गाढ़ी कमाई से चलने वाली संसद लगातार स्थगित होने से मोटी धनराशि नष्ट होती रही। दोनों सदनों के प्रति घण्टे कामकाज का अर्थिक मूल्य 22 लाख रुपए प्रति घण्टा पड़ता है। अर्थशास्त्रियों का मत है कि इस घोटाले की धनराशि जो अवैध रूप में स्विस बैंक में जमा है, यह धनराशि 65,223 अरब रुपए के लगभग बताई जाती है। विश्व के सबसे बड़े जनतन्त्र की सबसे बड़ी महासभा में यह दृश्य अत्यन्त ही दुर्भाग्यपूर्ण रहा।

* अवकाश प्राप्त प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान; ए.टी.एस ग्रीन विलेज, सेक्टर 93 ए, नोएडा।

भ्रष्टाचार उन्मूलन के लिए कुछ वर्षों से सुधीजन बड़ी निष्ठा से रोचक कार्य कर रहे हैं परन्तु अभी सफलता नहीं मिल सकी। तब तक इस दिशा में आध्यात्मिक सन्त, सामाजिक कार्यकर्त्ता, लब्ध प्रतिष्ठित वकील, अध्यापक समुदाय, निष्ठावान् और सत्यनिष्ठ अधिकारी, छात्र समुदाय आदि एकजुट होकर कार्य करें और जन जागृति हेतु सेमिनार, गोष्ठियाँ, रैलियाँ भी आयोजित की जाएँ। सभी बुद्धिजीवी स्पष्ट रूप से कहते रहे हैं कि जो जाँच एजेंसियाँ और आयोग केन्द्र सरकार ने गठित किए हैं, उनके अधिकार सीमित और राजनीति से प्रभावित हैं। इन संस्थाओं को जो भी जाँच का कार्य दिए गए वे प्रभावी रूप से कारगर साबित नहीं हुए। इन संस्थाओं को समय-समय पर जो भी कार्य दिया गया, उसमें समय भी काफी लगाया गया और कुछ कारगर निष्कर्ष नहीं निकला। उस पर जनता का धन कितना व्यय हुआ, इसकी विस्तृत और सही जानकारी मिलना कठिन है। शासन इन संगठनों को अपने नियन्त्रण में रखने के लिए प्रायः ओछे हथकण्डे अपनाता रहा है। इसी कारण जनता का विश्वास भी इन संगठनों से उठता जा रहा है। अतः अब समय की माँग है कि ऐसे घोटालों का पर्दाफाश करने के लिए जन-जागरण की आवश्यकता है ताकि सरकार द्वारा गठित एजेंसियों और आयोगों की कमी को दूर किया जा सके। यह तभी सम्भव है जबकि सब लोग इस दिशा में उसी प्रकार सोचें जैसा कि जब महानायक, लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने सारे देश में आन्दोलन कर सम्भव करने का बीड़ा उठाया था। उनके नेतृत्व में समाज के सभी वर्गों ने आन्दोलन में सक्रियता दिखाई थी। वही स्थिति पुनः देश में है और सबको इस दिशा में जुटना है।

ऐसा नहीं है कि भ्रष्टाचार का उन्मूलन नहीं हो सकेगा। अन्तरराष्ट्रीय रिपोर्टों से स्पष्ट होता है कि कई देश भ्रष्ट थे और अब वहाँ पर स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष संगठनों के कारण भ्रष्टाचार समाप्त हो गया है। ऐसे देशों में डेनमार्क, सिंगापुर, स्वीडन और स्विटजरलैण्ड प्रमुख हैं। हांगकांग भी कभी भ्रष्ट था। वहाँ पर सर्वाधिकार प्राप्त आयोग के माध्यम से निष्पक्ष और कठोर कार्यवाई करके अपनी छवि में काफी गुणात्मक सुधार कर लिया गया है।

इसी परिप्रेक्ष्य में अब भी भ्रष्टाचार के विरुद्ध कारगर लड़ाई के लिए पर्याप्त अधिकार और सुसंगत व्यवस्था की आवश्यकता है। इस हेतु निष्पक्ष एवं पारदर्शी भ्रष्टाचार निवारण आयोग का गठन हो। उसके सदस्यों का चयन पारदर्शी और सहभागिता वाली निष्पक्ष प्रक्रिया से किया जाए। उसके सभी कार्यों के निरीक्षण करने की आम लोगों को स्वतन्त्रता हो। ऐसा संगठन संवैधानिक ढाँचे में हो और उसकी परिधि में शासन के सभी अंगविधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सम्मिलित हों। अभी तक देश में रिश्वतखोरी की माँग बहुधा लोक शिकायतों का बड़ा हिस्सा होती है। एक आकलन के अनुसार आज भी 54 प्रतिशत लोग अपना काम कराने के लिए रिश्वत देने के लिए विवश होते हैं, अतः यह संगठन सरकारी विभागों के विरुद्ध



शिकायतों के निपटारे की कारगर व्यवस्था करे। इसके लिए यह संघात्मक रूप में होना चाहिए। भारत विशाल देश है तथा उसका सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक ढाँचा भी भिन्न है। ऐसे आयोग की सफलता में कोई सन्देह नहीं होना चाहिए क्योंकि ऐसा आयोग केन्द्रीय स्तर के अतिरिक्त राज्यीय और क्षेत्रीय स्तर पर भी बनाए जाएँ। यदि प्रचलित व्यवस्था में कोई रचनात्मक परिवर्तन शीघ्र नहीं किया गया तो देश का 'गणतन्त्र' लूटतन्त्र में बदल जाएगा और वैश्विक स्तर पर भारत की छवि और भी अधिक धूमिल होने से कोई भी नहीं बचा पाएगा। इस कारण भी सोचने को विवश है कि देश के 84 करोड़ लोग 20 रुपए प्रतिदिन से कम पर गुजारा कर रहे हैं। अतः भविष्य में अति विकट व भयावह परिस्थिति को देखकर इस दिशा में शीघ्र कारगर कदम उठाने की आवश्यकता है। राजनीतिक दलों से हम ऐसी आशा नहीं कर सकते क्योंकि आज के समय में वे अपना चरित्र और चिन्तन खो चुके हैं। अतः समाज के सभी द्रष्टावान्, कर्मठ व राष्ट्रवादी देशभक्त चिन्तकों, बुद्धिजीवियों व समाज के जागरूक नागरिकों को एकजुट होकर संगठित होना होगा तथा जनता के रक्त में पूरी तरह घुल चुके भ्रष्टाचार व अकर्मण्यता के जोंक को पूरी तरह निकालकर स्वस्थ मानसिकता को निर्मित करने में प्रभावी पहल करने के उत्तरदायित्व का संकल्प लेना होगा।

# परा और अपरा विद्या

**लक्ष्मी नारायण मित्तल***

भारत में अनेक शिक्षण संस्थानों ने अपना आदर्श वाक्य इस प्रकार घोषित किया है :

*विद्ययाऽमृतमश्नुते।*
*वह विद्या जो हमें अमरत्व की ओर ले जाए।*

एन.सी.ई.आर.टी. ने भी अपने प्रतीक चिह्न के नीचे यह वाक्यांश लिख रखा है।

ईशावास्योपनिषद् का ग्यारहवाँ मन्त्र है:

*विद्यां च अविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह।*

जो विद्या और अविद्या दोनों को जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को जीतता है और विद्या से अमरत्व को प्राप्त होता है।

मुण्डकोपनिषद् में जब सौनिक ऋषि ने ऋषि अंगिरा से पूछा था"किसको जानने से सब कुछ जाना जा सकता है?" तो ऋषि अंगिरा कहते हैं

*द्वे विद्या वेदितव्ये परा च अपरा च।*

दो विद्याएँ जाननी चाहिएपरा और अपरा दोनों।
अपरा विद्या अविद्या है और परा विद्या विद्या।
प्रसिद्ध गाँधीवादी इतिहासकार धर्मपाल लिखते हैं

"...पहले भारतीय चित्त पर गहराई से अंकित कुछेक और मौलिक भावों की बात कर ली जाए।...ऐसा ही एक मौलिक भाव परा और अपरा विद्याओं में भेद का है। भारतीय परम्परा में किसी समय विद्या और ज्ञान का इन दो धाराओं में विभाजन हुआ है। जो विद्या इस नश्वर, सतत, परिवर्तनशील, लीलामयी सृष्टि से परे के सनातन ब्रह्म की बात करती है, उस ब्रह्म से साक्षात्कार का मार्ग दिखलाती है, वह परा विद्या है। इसके विपरीत वे विद्याएँ इस सृष्टि के भीतर रहते हुए दैनन्दिन की समस्याओं के समाधान का मार्ग बतलातीं हैं, साधारण जीवनयापन को सम्भव बनाती हैं, वे अपरा विद्याएँ हैं।

धर्मपाल इसी प्रसंग में कहते हैं : "परा और अपरा का यह विभाजन कब हुआ यह तो साफ नहीं है। कृत युग की बात यह नहीं हो सकती। उस समय तो किसी विद्या की आवश्यकता ही नहीं थी। त्रेता की बात शायद यह न हो क्योंकि त्रेता में एक ही वेद है। त्रेता के अन्त और द्वापर के आरम्भ में जब सृष्टि की बढ़ती जटिलता के साथ-साथ अनेकानेक कला-कौशलों और विद्या-विद्याओं की आवश्यकता पड़ने लगी, उस समय शायद परा और अपरा के इस विभाजन की बात उठी होगी।"[1]

('भारतीय चित्त, मानस और काल', भारतीपीठम्, पृ. 36)

भारतीय शास्त्रों के मनीषी चारों वेदों, उसकी विभिन्न शाखाओं और उससे सम्बन्धित ब्राह्मण, उपनिषद् आदि को परा विद्या में शामिल करते हैं और पुराण, इतिहास, विभिन्न शिल्पों सम्बन्धी कौशल, ज्योतिष और आयुर्वेद से सम्बन्धित संहिताओं को अपरा का भण्डार मानते हैं।

उपनिषद् पढ़ने वालों को लगता है कि भौतिक विद्या तो अविद्या है और परा विद्या को हम सीख नहीं सकते तो उपनिषद् का ज्ञान व्यर्थ है। पर उपनिषद् केवल यह कहता है कि विद्या और अविद्या का भेद जान लो। यह नहीं कहता कि इसे छोड़ दो। अविद्या से जीविका चलती है, जीवन चलता है। कोई अस्वस्थ है तो उसे वैद्य/डॉक्टर की आवश्यकता होगी। जीवन में विभिन्न विधाओं और कलाओं की आवश्यकता रहती है नहीं तो जीवन चलना असम्भव हो जाएगा। हाँ, हमें अविद्या/परा विद्या की सीमा समझ लेनी चाहिए। केवल परा विद्या को लेकर रहेंगे तो जीवन कैसे चलेगा? परन्तु ब्रह्मज्ञानी कहते हैं कि परा विद्या को छोड़ने से संसार नश्वर है, क्षण-क्षण परिवर्तनशील है, अस्थिर है, यह कैसे समझोगे?

अपरा विद्या का सीधा सम्बन्ध स्वदेशी से है। यों तो हम एक-दूसरे से सीखते ही रहते हैं। ऐसा कहा जाता है कि छपाई की कला यूरोप ने चीन से सीखी। चेचक का टीका ब्रिटेन ने तुर्की से सीखा। कहते हैं आधुनिक शल्य क्रिया के यन्त्रादि सन् 1790-1810 के बीच यूरोपीय जानकारों ने भारत से, पुणे सेसीखा। बढ़िया इस्पात बनाना भी शायद भारत से सीखा है।

परन्तु आटे की हाथ-चक्की, तेल पिराई की घानी, गन्ना पिराई की हाथ-मशीन मिट्टी के घड़े और अन्य बर्तन, पत्तल आदि का हमारे सामाजिक जीवन में तिरस्कार होने से ये हीन माने जाने लगे। परन्तु परा विद्या निकृष्ट है और अपरा विद्या श्रेष्ठ-शायद यह भाव भारतीय चित्त में बहुत देर से आया है। शायद हम इसे आधुनिकता या विदेशीमुगल या ब्रिटिशप्रभाव भी कह सकते हैं।

* डॉ. लक्ष्मी नारायण मित्तल, एच 902, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, मुरैना476001 (म.प्र.)

मूल ग्रन्थों के स्तर पर परा और अपरा का यह भेद बहुत स्पष्ट भी नहीं है। आयुर्वेद केवल अपरा विद्या है पर इसमें भी साधारण स्वास्थ्य को परा के सन्दर्भ में देखने के उल्लेख हैं। व्याकरण जैसी विद्याएँ तो परा और अपरा दोनों से सम्बन्धित हैं। दोनों प्रकार की विद्याओं के सम्प्रेषण में व्याकरण की अहम् भूमिका है। ज्योतिष भी कुछ अर्थों में संभवतः परा और अपरा दोनों से सम्बन्धित होगा।

कालान्तर में शायद यह मान लिया गया कि जो विद्याएँ परा से सम्बन्धित हैं उनके पालनकार ऊँचे हैं और अपरा विद्या से सम्बन्धित लोग कुछ नीचे दर्जे के हैं। परा से जो जितना नजदीक वह उतना ऊँचा और अपरा से जो जितनी गहराई से जुड़ा है, वह उतना नीचा। वेदाध्ययन करने वाला ब्राह्मण, जीवनयापन से जुड़ी कलाओं और शिल्पों के जानकार शूद्र।

धर्मपाल इस सम्बन्ध में कहते हैं : "पुरुष सूक्त में यह अवश्य कहा गया है कि ब्रह्मा के पाँवों से शूद्र उत्पन्न हुए, उसकी जंघाओं से वैश्य आए, भुजाओं से क्षत्रिय और सिर से ब्राह्मण। ...पर इस सूक्त में यह तो कहीं नहीं आया कि शूद्र नीच हैं, और ब्राह्मण ऊँचे हैं। सिर का काम, पाँवों के काम से ऊँचा है, यह तो बाद की व्याख्या लगती है।"

(धर्मपाल : 'भारतीय चित्त, मानस और काल', भारतीपीठम्, पृ. 38)

भारतीय शास्त्रों के जानकार कहते हैं कि कर्म और कर्मफल के मौलिक सिद्धान्त का इस विचार से तो कोई सम्बन्ध नहीं है कि कुछ कर्म अपने आप में निकृष्ट होते हैं और कुछ कर्म श्रेष्ठ। वेदों का उच्चारण या कपड़ा बुनने का भेद तो परा और अपरा विद्या के भेद से निकलकर आती है। परन्तु यह सन्तुलन श्रेष्ठता-निकृष्टता से सम्बन्धित नहीं है। बाद में परा और अपरा विद्याओं की कुछ ऐसी यान्त्रिक व्याख्या होने लगी कि दरिद्रता, भुखमरी आदि को कर्मफल का चस्पा दे दिया गया। इस सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा है। एक ऋषि अनेक वर्षों की तपस्या के बाद नगर की ओर आए और एक पेड़ के नीचे विश्राम करते समय एक चिड़िया ने उन पर बीट कर दी। तपस्वी ने चिड़िया को देखा और वह भष्म हो गई। नगर में जब वे एक गृहस्थ के द्वार पर पहुँचे तो गृहिणी ने दरवाजा खोलने पर कुछ देर कर दी। तपस्वी का रोष बढ़ गया, तो गृहिणी ने कहा, 'महाराज अकारण रुष्ट मत होइए। मैं कोई वह चिड़िया नहीं हूँ।' कथा का सार यह है कि जो ज्ञान तपस्वी को अनेक वर्षों की साधना पर मिला, गृहिणी को वह सिद्धि अपने गृह कार्य को करने की तन्मयता से ही मिल गई। यह बात प्रमाणित करती है कि पुराण-काल तक यह कर्म के ऊँच-नीच की बात न थी। क्योंकि कर्म तो सब बराबर होते हैं परन्तु जिस भाव व तन्मयता से वह किया जाता है, वह महत्त्वपूर्ण है।



ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मंत्र में बतलाया गया है कि "सब कुछ ईश्वर से आच्छादित है।" दूसरे मंत्र में कहा गया है कि वैसी मानसिक स्थिति न हो, उतनी सामर्थ्य न हो तो कर्म करोकुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत, शतं समाः॥

आगे कहा है कि जो विद्या निरत हैं, विद्याभिमानी हैं, वे घोर अंधकार में हैं :

*अन्धः तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते!*

यह विरोधाभास कैसा? आगे कहा गया है कि शास्त्रों का अध्ययन हमारे मन को संस्कारित करने के लिए है। यह फल है। चिन्तन में दूसरे व्यक्ति को भी संस्कारित किया जा सकेयह उपफल है। धान से चावल न निकालें, लौह से इस्पात न बनाएँ यानी संस्कारित न करें, तो अनुपयोगी।

यानी सारी विद्याएँपरा और अपराहमें संस्कारित करने के लिए हैं!!

## संदर्भ

1. धर्मपाल, 'भारतीय चित्त मानस और काल', भारतीपीठम्, वर्धा, पृ. 35

# भूमंडलीकरण के दौर से गुजरती समकालीन हिन्दी कविता

**मृत्युंजय उपाध्याय***

गत दो दशकों में हमारे लोकजीवन का परिदृश्य कई दृष्टियों से बदल चुका है। यह वैश्वीकरण, आधुनिक और मीडिया की मार से बुरी तरह आहत है। लोकजीवन के सांस्कृतिक स्वरूप पर मुनाफावादी संस्कृति का सबसे गहरा आक्रमण हुआ है। इससे समकालीन हिन्दी कविता ने गहराई से अंकित किया है। रमण कुमार सिंह की कविताओं में लोक के इस आहत और क्षत-विक्षत स्वरूप को मिथिलांचल के सन्दर्भ में जीवन्त स्वर मिला है :

"विद्यापति और भिखारी ठाकुर/की विरासत के लिए/टूटती चौपाल और/डरावनी होती जा रही पनघट के लिए/बेचैन है हमारे गाँव का युवक/...एक युवक वर्षों से/युवक की तरह बेचैनी में उबल रहा है/और ऊपर बैठे लोगों के बीच/मतों के समीकरण पर चल रहा है विमर्श/जिसमें नहीं है शामिल/उसकी बेचैनी।"[1]

यहाँ वैश्वीकरण के कारण जर्जरित होती जा रही लोक संस्कृति को राजनीतिक पुट देकर युवक की बेचैनी और लोकजीवन के ध्वस्त स्वरूप का कोलाज रचा गया है। वह एक बेचैनी भरे सामान्य भाव को भी राजनैतिक काव्यार्थ देता है। परन्तु इसके समानान्तर एक कविता वैश्वीकरण से अप्रभावित होकर लोकजीवन का रंग विधाव करती है भले वह पग-पग पर बहुराष्ट्रीय कम्पनी के छलछद्म से सतर्क होती चले :

"यहाँ किसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी का रंग नहीं है/ और न ही है/ किसी अन्तराष्ट्रीय चित्रकार की तूलिका/जिसकी पेंटिंग बिकती है ऊँची बोली पर/बाजार में हाथों हाथ/...माटी की भीत पर जिसे छुए चावल/दूध और सिन्दूर से बनाकर रंग/ऊँगलियों की तूलिका से/औरतें रच रही हैं कोहबर चित्र...।"[2] यह हमारे समय का

* प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, पता-वृन्दावन, मनोरम नगर, एल.सी. रोड, धनबाद-826001; मो. 9334088307



अभिशाप है कि गत कई सदियों से टेक्नॉलॉजीधर्मी आधुनिक संस्कृतिक न सिर्फ जन संस्कृति से अलग-थलग विकसित होती रही है बल्कि इसका अधिकांश विकास जनसंस्कृति की बलिवेदी पर हुआ है। वैसे यह संस्कृति मनुष्य और प्रकृति के बीच के सामंजस्य की हजारों वर्ष पुरानी पुख्ता जमीन पर खड़ी है और इसमें सबकी सम्मिलित आकांक्षाओं का समावेश है। परन्तु आज यह संस्कृति बहुत नाजुक और खतरनाक कगार पर खड़ी हुई है और इसमें आर्थिक साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा प्रायोजित आधुनिक विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी की मार को सह पाने की शक्ति बाकी नहीं बची है। जितेन्द्र भाटिया ने 'सदी के प्रश्न' में यह सवाल उठाया है जिससे कवि जूझ रहे हैं।

यहाँ कवि एक संवेदनशील पत्रकार की तरह हमारे समय के यथार्थ की भयावहता का काव्यात्मक निरूपण करते हैं। यहाँ उनकी दृष्टि समकालीन राजनीतिक सन्दर्भों को जाँचने-परखने की कोशिश करती है :

"गाँव में अब बची हुई क्षत-विक्षत सामाजिकता/व्यथित मन/उपेक्षित बचपन/टूटे स्कूल/गलियों में घूमते नर-भेड़िए/शोर करती मशीनें/पनियाई आँखों वाली औरतें/और सन्ताप करते चालीस साल के कुछ बूढ़े।"

यह समय के यथार्थ का मानो मर्सिया लिखा गया है। भूमंडलीकरण के बाद स्थितियाँ तेजी से बदलने लगीं। जहाँ पहले राज्य अपनी लोकप्रियता और अस्तित्व-रक्षा के लिए ही सही गरीबों के प्रति सदय और अमीरों के प्रति सख्त होने का यथार्थ या स्वांग प्रस्तुत करता था, वहाँ भूमंडलीकृत विश्व में राज्य वंचित तबके के प्रति अपने दायित्वों को दरकिनार करके वर्चस्वशाली समुदाय के लिए निधड़क गलीचे बिछाने लगा। जहाँ गरीबों, किसानों, मजदूरों को रियायतें मिलती थीं, वहाँ उसे कम कर या उपेक्षित कर उद्योगपतियों को तोहफे देने की होड़ मच गई। अखिलेश का मानना है :

"वस्तुतः अमीरों के लिए राज्य का यह तथाकथित लचीला और उदारवादी आचरण एक तरह से साधारणजन के लिए दमनकारी ही था। उसके हित, उसकी रियायतों को क्षतिग्रस्त करने के कारण वह दमनकारी था तो औद्योगिक घरानों को जनता को लूटने का स्वर्णिम अवसर मुहैया कराने के कारण भी। यह बहुत लुभावना और भयानक कारोबार था जिसमें राज्य विनम्र, दूरंदेशी और उदार दिखता था किन्तु वह उदध्र, चालू और निर्भय था। वह अपने फरेब पर मुग्ध और आश्वस्त था कि मामूली लोग हकीकत नहीं जान सकेंगे।"[3]

नतीजा सामने आ जाता है। महँगाई की मार से असमय सपनों का खोना, उसमें परियों का न आना और सपनों का सरकारी हो जाना :

"नींद न आती सपने आते/सपनों में सपने खो जाते/परियों ने भी आना छोड़ा/सपने भी लगते सरकारी/"[4] फलतः आँगन की किलकारी आहत हो गई। रिश्ते बिकने लगे। चेहरों पर चेहरे लग गए। चेहरा छिपाने के नाना हथकंडे अपनाए जाने लगे।

नियमों, सिद्धान्तों और नीतियों की धरा हो गई बंजर "बंजर जैसी लगती है अब/धारा वसूलों की"[5] क्या विडम्बना है, त्रासदी है हसरत छिन गए, लुप्त हो गए :

"चेहरे पर चेहरे दिखते हैं/रुपयों में रिश्ते बिकते हैं/माला बनाने से वंचित है/हसरत फूलों की।"[6]

मनुष्य निर्णय नहीं ले पाता है कि वह स्वप्न देख रहा है या यह सच है। यह आह्लाद है या अनुवाद, बदलाव है। किकर्त्तव्यविमूढ़ता की स्थिति आ गई है : "ख्वाब है, सच्चाई है,/बदलाव है, क्या है?"[7]

'आओ बसन्त', 'बयार' जैसी कविताओं में बसन्त की शीतल बयार मदन वात्स्यायन के कोमल कुसुम मन में प्रेम और सौन्दर्य के अनगिनत भाव जगाती है। वहीं इस इंजीनियर कवि ने राक्षसी मशीनों के अनवरत कर्कश कोलाहल में मनुष्यता का दम घुटते देखा है। अतः पूर्णिमा के उजाले की जगह उनकी आँखें पूर्णिमा के अन्धकार को कल-कारखाने की संस्कृति के साथ देखती है। उन्हें प्रतीत होता है कि चाँदनी का तेज दूषित हो गया है। वसन्त का उल्लास और हुलास औद्योगिक पूँजीवाद की भेंट चढ़ गया है। कल-कारखाने के भोंपू मशीनों की चीख में उन्हें लगता है :

"धुआँधार अग्नि बाणों की वर्षा से काल-सा बसन्त दिशाओं को, चिथड़ी चिथड़ी किए दे रहा है।"[8] यहाँ औद्योगिक पूँजीवाद की आक्रामकता को प्रकृति के विविध सन्दर्भों में निरूपित कर उसके विरुद्ध वातावरण रचने की कोशिश है। इस संग्रह की कविताएं 'मौर्य दर्शन', 'शिफ्ट फोरमेन', 'रोज शाम को', आदि औद्योगिक पूँजीवाद से टकराती हैं। अपने समय की विडम्बनाओं, विसंगतियों, मशीनी संस्कृति की यातना से मुठभेड़ कराती है। 'नया मेघदूत' अपने समय के कठोर और कुरूप सच को बेलौस होकर उजागर करती है :

"यहाँ एक ओर देखोगे/मदासेठों की ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ/ओहदाशाहों के बड़े-बड़े बँगले/उनकी चमचमाती लम्बी-लम्बी मोटरें।" ठीक इसके विपरीत दूसरा चित्र है, दयनीय, वीभत्स :

"खानों से कारखानों से, टूटी झोपड़ियों से निकलते/सूअर-जैसे नंगे, सूअर-जैसे गन्दे/और सूअर-जैसे विकृत शरीरवाले/पाँव घसीटते मेरे सूबे के लोग।"[9] इतिहास का यह वैभवशाली क्षेत्र कवि के सूबे की किस्मत पर नियति का व्यंग्य अट्टहास है।

मदन केशरी पटरी बाजार का एक दृश्य प्रस्तुत करते हैं जो विश्व बाजार के अजदहे में समा जाने वाला है। औद्योगिक पूँजीवाद की भयावहता, विसंगतियों के फैलाव की चिन्ता सर्वत्र है। इच्छा को मारने की जरूरत है, यादों की जुगाली करने की और अतीत के गली-गलियारे में चहलकदमी करने की भी। शेष उपाय ही क्या बचा है :

"जहाँ रोज की जरूरतों में शामिल है इच्छाओं को मारना/यह पटरी बाजार बचाए हुए चीजों को आम आदमी की सोच से लुप्त होने से/अभी भी अरहर की दाल



में पड़ सकती है कभी बघार/एक चम्मच असली घी में भुने हुए जीरे की छौंक/पच्चीस रुपए किलो में रस्क बदल सकता है शाम की चाय का जायका/लक्मे या रेवलॉन न सही, अनजान लेबल वाला लिपस्टिक/भर सकता है औरत के होंठों में कामुकता का रंग/बच्चों की नींद में अभी भी गिर सकती है रबर की गेंद युनीलीवर, प्राक्टर एंड गैंबल और पेप्सी को बाजार नियन्त्रक सत्ता के बावजूद/आम जन की खरीददारी में अभी भी शामिल हैं चीजों के रंग और स्वाद।"[10]

वैश्वीकरण का एक स्तम्भ है बाजारवाद जो प्रोत्साहन देता है उपभोक्तावाद को। वस्तु का उपभोग न हो, वह पण्य पदार्थ न हो तो फिर बाजार क्या करेगा? वैश्वीकरण का यह खौफनाक चेहरा कैसे सामान्य जन को लाचार और दयनीय बनाता जाता है। छोटे-छोटे व्यापारी, कलाकार, करतब दिखाने वाले पहले चले जाते हैं हाशिए पर, फिर दृश्य से ओझल हो जाते हैं। परिस्थिति उन्हें जबरन दृश्य से बाहर निकाल फेंकती है या फिर दूसरा कोई विकल्प ढूँढ़ने पर मजबूर करती है :

"बदल गया है अर्थतन्त्र की हिंसा का शिल्प/अब वह सीधे बाजार से विस्थापित नहीं किया जाएगा/ सब कुछ बिल्कुल प्रजातान्त्रिक तरीके से होगा/महज परास्त कर दिया जाएगा उसका उद्यम/निरस्त कर दी जाएगी दुकानदारी की उसकी अर्जित कला/और एक दिन अपने अन्धेरे में वह खरीदेगा सल्फास।"

इतना ही नहीं धीरे-धीरे स्त्रियाँ सौन्दर्य की प्रशंसा से आगे बढ़ती-बढ़ती अपने शरीर पर केन्द्रित दृष्टि से विधती जाएँगी।

"हरे और चम्पई रंग के सलवार-कुर्ते में एक अर्थभरा प्रश्न करती है/बड़ा बदमाश है मैं टमाटर चुनती हूँ और वह दबी नजर से देखे जाता है।"[12]

पंकज राग का कवितासंग्रह है 'यह भूमण्डल की रात है।' इसमें उनका मानना है कि 1857 की लड़ाई सिर्फ सत्ता-प्राप्ति की लड़ाई नहीं थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी के औपनिवेशिक राज्य में आ रहे सांस्कृतिक परिवर्तनों ने इसमें महत्त्वपूर्ण उत्प्रेरक का काम किया। जनता इस नए सांस्कृतिक हमले के प्रति रुष्ट थी। पंकज राग 1857 की परिस्थितियाँ गिनाने से जरा हटकर आज की नव औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा किए जा रहे सांस्कृतिक हमले तक पहुँचते हैं और उसके विरुद्ध हमारी भूमिका का प्रश्न उठाते हैं :

"हमसे अधिक 1857 को साथ लेकर चले हैं यही उपनिवेशी ताकत/जो अब सभी आडंबर छोड़ पूरे निवेशी हैं/भौतिक जगत से अन्तर्चेतना तक चलता है निवेश का खेल/तभी तो अब खतरे साफ नजर नहीं आते/वक्त इतनी तेजी से बीतता है खिलौने के बीच/कि विचार बन नहीं पाते, नजरें टिक नहीं पातीं/जीवन शैली का अर्थ मानो एक क्षण हो गया हो/और क्षण से क्षण की कुलाँचो में पूरी पृथ्वी को नाप लेना ही माद्दा हो/क्योंकि पृथ्वी जब एक-सी होने का आभास देती है।/पर पृथ्वी एक है

कहाँ?/न कभी थी न है/ जब जब यह अहसास जागता है तो 1857 जैसी कोई चीज होती है/जब जब वह अहसास भरता है तो 2007 बीतता चला जाता है"[13]

भूमंडलीकरण के प्रभावों को सिर्फ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के राष्ट्रों के मध्य नियन्त्रणहीन आवागमन और उसकी व्यावसायिक गतिविधियों से नहीं समझा जा सकता। उसके सबसे बड़े घातक प्रभाव पूँजीवादी विकृतियों के रूप में देखे जा सकते हैं। पंकज इन प्रभावों को समवेत रूप से देखते हैं। संग्रह की पहली और शीर्षनामा कविता 'यह भूमंडल की रात है' इसका प्रमाण है। इस रात का दृश्य है :

"पूरा भूमंडल इस कमरे में है/कुछ रोशनी हमारे आई.एम.आर. के कारण ही इस जगह है हमारी थकान कर्ज से भी मिटती है, अनुदान से भी विदेशी शराब जैसी निर्बनाँध उधारी/काँच के रेशों की तरह का अनुदान जो हल्के-हल्के काटता है। खून कमरे के बाहर ही टपके/इस रात इसका भी पुख्ता इन्तजाम है।/ऐसी ही रातें सौ साल पहले भी थीं। लेकिन तब शायद स्पष्ट पहचान थी/अब सब कुछ गड्डमड्ड हो गया है। विभेद डूब गया है।" यह ऐसी रात है जहाँ गहन अन्धकार है और अन्धेरे में घट रही गतिविधियों और जनविरोधी षडयन्त्रों को समझने के लिए वैचारिक रूप से स्पष्ट साहस और सूझ-बूझ से भरा प्रयास चाहिए जो कवि में मौजूद है।

उनकी 'कहानी' नामक कविता भूमंडलीकृत विश्वग्राम के सांस्कृतिक दूत बहुचैनली टी.वी. पर बड़े उत्पादकों द्वारा वित्तपोषित और प्रायोजित कहानियों पर आधारित है। यह कविता हमारे ही परिवारों की एक ऐसी छवि से सामना कराती है जिनमें विकृत पूँजीवाद के अमानवीय सम्बन्धों और पुरुष सत्तात्मक सामन्ती सम्बन्धों का ग्लैमरस घोल है। उनकी कविता यह आँखों में उँगली डालकर बता देती है कि भूमंडलीकृत बाजार सामन्ती मध्यकालीनता के लिए जगह निकाल रहा है ताकि नई सांस्कृतिक निर्मितियों (सीरियलों, धार्मिक प्रवचनों वाले चैनलों की सामग्री) के लिए नए खरीददार ढूँढ़े जा सकें। पिछले समय में धार्मिक निर्मितियों का एक पूरा उद्योग विकसित हुआ है। यह आश्चर्य की नहीं युग की माँग के अनुसार ही है। भूमंडलीकृत की शक्तियाँ 'पोर्नोग्राफी' भी बेचती है और अध्यात्म भी। ये अनेक कारणों से सांस्कृतिक मूलवादी और पुनरुत्थानवादी संस्कृतियों से समझौता करती हैंऐसा मानना है आशीष त्रिपाठी का। 'गौरव यात्रा' कविता में इसके गहरे संकेत हैं। रथयात्रा निकालने का जो सिलसिला चल निकला उसमें हिंसक मूलतत्त्ववादियों ने ही अबाध गति से उदारीकरण जारी रखा और फीलगुड तथा इंडिया शाइनिंग और राजनीतिक प्रोपेगैंडा भी परोसा। पंकज राग का मानना है कि भूमंडलीकरण की एक बड़ी शक्ति के रूप में सूचना-उद्योग काम करता है- 'हाट-बाजारों में टोकरी भर-भर सूचनाएँ लेकर बैठेंगे मिट्टी के लोग/और सोना बनता जाए'।[15]

अनामिका की 'खुरदुरी हथेलियाँ'[17] की कुछ कविताओं में वैश्वीकरण और बाजारवाद पर गहरी चिन्ता व्यक्त की गई है। विजय वर्मा उस कृति की समीक्षा में बताते हैं :



"वैश्वीकरण और बाजारवाद के दौर में विश्वग्राम अपने-आप में बहुत कुछ समेटे हुए है। एक ओर लाभ है तो दूसरी ओर मूल्यों का विखंडन। मनुष्य के अन्दर के सूक्ष्म तत्त्व को झकझोरता हुआ अलग व्यथा की एक इबारत लिख जाता है जिसे अनुभव करना और उसे शब्दों में उकेरना सम्भवतया अनामिका जैसी अति सूक्ष्म संवेदी रचनाकार का ही हौसला और संकल्प हो सकता है जो अपने-आप में असाधारण प्रयास ही नहीं एक सफल, सशक्त एवं मार्मिक चित्रण की सृष्टि है।"[17]

यह युग प्रतिस्पर्धा का युग है। हर क्षेत्र में, कदम-कदम पर प्रतिस्पर्धा का जाल बिछा है। 'बेचो और खाओ' संस्कृति का बाजार गर्म है। यहाँ जीवन में हर चीज बिकाऊ है और उसका खरीददार भी है। ठेकेदारी जोरों पर है चाहे धर्म हो या युद्ध हो या विनाश हो या महाविनाश। 'गणतन्त्र' कविता में उनका यह द्वन्द्व उभर आता है :

"सोचती हूँ बचपन में मैंने तो इसको/खिलौने की भी बन्दूक नहीं दी/डरती रही कि हो नहीं जाए यह भी अतिवादी।/है हवा में इतनी हिंसा/'आतंक', 'अगवा', 'आगजनी', 'लूट' 'हत्या"... हाईजैकिंग/ये हिंसक शब्द अबाबीलों से मँडरा रहे हैं सिर पर।"

अनामिका की अनभिज्ञता इन परिस्थितियों से कतई नहीं हो सकती जब दुनिया के इस महासमर में बाजार लड़ रहे हों, शक्तियाँ भिड़ रही हों और देश क्षेत्र प्रयोगशालाओं में तब्दील हो रहा हो। वहाँ विचारधाराओं का महत्त्व न हो, वह ध्वस्त हो रही हो, नई संस्कृति प्राचीन संस्कृतियों से टकराकर अपना वर्चस्व बना रही हो। यहाँ आलम यह है कि शक्तियाँ, बाजार, आतंक भले ही जीत जाए पर मानवता कहीं-न-कहीं हारती चली जाए/'गृह लक्ष्मी', 'पूछताछ कार्यालय' 'घूमन्तू टेलिफोन', 'कैलेंडर' ऐसी कविताएँ इसके प्रबल प्रमाण हैं।

परन्तु परिस्थितियों की विषमता-भयावहता के मध्य आशा-विश्वास खोजने की कोशिश और मानवता को जिलाए-जगाए रखने का प्रयास निरन्तर जारी है :

"किसी क्षितिज के पार कहीं पर/है कोई सशक्त पोत क्या/उषा-किरण के पालोंवाला?[19]" प्रश्नोत्तर कवि के भीतर मौजूद संकल्प-शक्ति में ही निहित है। उसमें आश्वस्ति का भाव भरा है। उसे पूरा यकीन है कि कुछ मानवीय सरोकार आज भी बचे हैं जो मनुष्य के विरुद्ध विनाश की कार्यवाही से बचा लेंगे। राजेन्द्र निशेश को भी ऐसा ही विश्वास है : "एक हिरनी तुम्हारे वेग में भी है/एक निर्झर है तेरी शिलाओं में भी/एक मरमर तुम्हारी फुनगियों में भी है।[20]" व्यवस्था की सांधातिकता का जवाब अभी आदमी के पास है और वह परिस्थिति की विपरीतता के सामने समर्पण के लिए तैयार नहीं है। उसका अन्तःस्रोत अभी सूखा नहीं है। वह बहुत आगे तक इस संघर्ष को जारी रखने की सामर्थ्य से लैस है :

"हर रात/लौट आता हूँ/रेंगता-रेंगता/कटे हुए परों के साथ/उसी गली में/जहाँ मेरा घर है/ और जहाँ मुसकुराता है एक बच्चा/हर शाम मुझे पंख देने के लिए।"[21] पग-पग पर आहत होता आदमी बाजार के खिलाफ लड़ रहा है जी जान से : "लड़ रहा है वह उन स्वप्नों की खातिर/जो उसने देखे थे अपने बच्चों के साथ/बार-बार/पर जिन्हें चुरा ले गया बाजार/इतने चुपके से कि पता ही नहीं चल सका/"[21अ] बाजार की मार से तिलमिलाए हुए हैं हम, आहत, पीड़ित, विवश फिर भी आशाएँ शेष हैं कि वह सूरज से दोस्ती करने का मंसूबा बाँधता है : "बाजारी खौफ और आतंक के कोहरे से/लिपटे रहने के बावजूद/सूरज से दोस्ती करने की/कर रहे हैं बदस्तूर कोशिश।"[21] इसके अलावा विश्वरंजन ने बाजारवाद के इर्दगिर्द घूमती कुछ कविताएँ लिखी हैं 'बाजार के इर्दगिर्द घूमती कुछ कविताएँ', 'बाजार की मार और आज का आदमी', 'तलाश बाजार से बाहर निकल आने की...' 'बाजार के खिलाफ जंग का पहला एलान', 'बाजार के खिलाफ लड़ना एक अनिवार्य हिमाकत', 'बाजार वह मन है'। फ्रेडरिक एंगेल्स बाजारवाद के आक्रमण का नतीजा स्पष्ट करते हैं :

"पुराने विश्व की सीमाएँ भंग हो गईं। दुनिया की खोज तो दरअसल अब हुई थी, जो आगे चलकर आधुनिक उद्योग का प्रस्थान बिन्दु बना।"

उधर जगदीश चतुर्वेदी बार-बार भूमंडलीकरण की पीड़ा का अहसास महानगरीय जीवन की त्रासदी से व्यक्त कर रहे हैं। 'मृत्यु जैसी खामोशी', 'नगर-यन्त्रण', 'बीसवीं सदी के बाद', ऐसी कविताएँ देखी जा सकती हैं। "मुझे दहशत नहीं होती यह सुनकर कि/एक पूरा मुल्क आग में झुलस दिया गया/यह तो इस शताब्दी का सत्य है।"[22]

उन्हें 'बीसवीं सदी के बाद' कविता में चिन्ता है आने वाले कल की : "दो दशक बाद ये नदियाँ न रहेंगी गहरी/पहाड़ हो जाएँगे सपाट, शहर रेगिस्तान/एक ताबूत में बन्द हो जाएगी संस्कृति/और सड़कों पर विचरेंगे रोबोट-यन्त्र पुरुष।"[23]

उधर बाजारवाद, मल्टीनेशनल कम्पनियों की ऊँची पगार ने आदमी को जाति, धर्म, सांस्कृतिक विशिष्टता, राष्ट्रीयता आदि से अलग कर दिया है। इनमें अनास्था का जहर घोल दिया है :

"मल्टीनेशनल कम्पनी में बहुत मोटी पगार वाली नौकरी/मिलने पर उसने उड़ेली अपनी अनास्थाएँ/पूरे जोर-शोर से/मैं जाति, धर्म सांस्कृतिक वैशिष्ट्य, राष्ट्रीयता/वगैरह को नहीं मानता..., ...मेरा संयम भुरभुराता लगा मुझे।[24]" इतना ही नहीं, उसका 'स्व' उसकी निजी पहचान भी इस कोलाहल में लुप्त होते जा रहे हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के चकाचौंध किंबा आतंक में वह यह निर्णय नहीं कर पाता कि किसको अहमियत दी जाए, किसको नहीं, वह अपनी अस्मिता को बरकरार रखे या उसका दास बन जाए-अजीब ऊहापोह की स्थिति है :

"मैं किसको मानता हूँ और किसकों नहीं मानता/आपको पापा अब क्या बताऊँ/जब मैं खुद ही इस बात को ठीक से नहीं जानता..."[25]



आर्थिक उदारीकरण के दौर में भूमंडलीकरण (अर्थात भूमंडलीकरण) की प्रक्रिया का सबसे बड़ा नुकसान और सजा इस देश के आमजन को भुगतनी पड़ती है। स्पष्ट है कि औसत भारतीय किसान हमारी अर्थव्यवस्था में सबसे निरीह नागरिक बन चुका है। गाँवो के इस क्रूरतम भयावह यथार्थ का सामना समकालीन हिन्दी कविता करती है। इस एजेंडे पर तत्काल बचाने की प्रक्रिया पर बलाघात है। श्रीप्रकाश शुक्ल का यह 'बचाना' कविता की निरर्थक कोशिश नहीं, न ही यथार्थ से पलायन है, बल्कि यादों में ही सही कविता का पुनर्वास है। कुल मिलाकर यह कविता (पोतना) पूरब के आदमी का अपने घर की कहानी की दिशा याद दिला देती है। पूरे देश में प्रायः भारतीय बोलियों के समाज की तस्वीर यही है। इस कविता का प्रभाव भूमंडलीकरण से उपजे नए बाजारवाद के विरुद्ध कारगर हस्तक्षेप के रूप में लक्षित होता है। पोतना घर, आँगन द्वार, देहरी पोंछने का उपकरण है। उसके बिना मिट्टी के घरो में चूल्हे से लेकर घर आँगन की लिपाई-पुताई नहीं होती। परन्तु बाजारवाद के कारण पुराने मकान ध्वस्त हुए और नए सीमेन्ट के मकान बन गए और पोतना हो गया व्यर्थ, फालतू। व्यवस्था की नई मशीनरी में साधारण आदमी की नियति का ऐसा मार्मिक और भाव-प्रवण चित्रण दुर्लभ है जिसके कारण 'वायपर' की जगह पोतना खोजने की विवशता उत्पन्न हो गई है :

"कच्चे घर के पीछे एक पोतने की उपस्थिति/उसे सही सलामत होने की निशानी है/जबकि आज के घर में वायपर का प्रवेश है/कितने वायरस का प्रवेश/कभी का पोतना जिसे बहुत सहेजकर रखा गया था/आँगन के एक कोने में/विलुप्त होती प्रजातियों में सबसे जोरदार प्रजाति है... एक दिन अचानक जब/किसी संगमरमरी फर्श से फिसले बूढ़े की तरह/उखड़ गए उसके हाथ-पाँव/जब बहुत याद आती पोतने की/लोगों ने पुचकारा उसे/नहला-धुलाकर उठाया गया उसको/लेकिन पोतना तो पोतना ही था/ उसने उठने से मना कर दिया।"[26]

'पोतना' का कविता के अन्त में अपनी जगह से उठने की मनाही का साहस मौजूदा व्यवस्था में आम आदमी की ताकत और उसकी हिम्मत का प्रतीक है जो भूमंडलीकरण की त्रासदी से निजात दिला सकता है और अपनी जड़ों को सुरक्षित रख सकता है।

नरेश मोहन घर से बाहर निकलते हुए अपना सिर धड़ से अलग कर रख लेते हैं। इसलिए वे पता नहीं वह कब किसी कार, ट्रक से कुचल जाएँ कि किसी आतंकवादी के विस्फोट के शिकार हो जाएँ

"इसलिए/जब मैं/घर आता हूँ/तब अपना सिर/धड़ पर लगाकर/शाम को गिनता हूँ परिवार के सिर।"[27]

तुषार धवल की कविताएँ हाशिए में खड़े उस आदमी के पक्ष में खड़ी होती हैं। अतः उसमें व्यवस्था और समकालीन राजनीति के प्रति तार्किक आक्रोश प्रकट होता

है। व्यवस्था के ठेठ भारतीय सन्दर्भों और वैश्विक परिप्रेक्ष्य दोनों को ही यह कविता दायरे में लेती है। साधारण अर्थों में भूमंडलीकरण, उदारीकरण, आतंकवाद, पर्यावरण, भ्रष्टाचार, विकास की राजनीति व क्षेत्रवाद, व्यवस्थाजनित विस्थापन और भेदवादी राजनीति इन कविताओं में कहीं-न-कहीं मौजूद है। एक ओर आमजनों में बेहतरी तरक्की और विकास के असंख्य सपने भरे गए हैं और दूसरी ओर आदमी ठगा गया है पगपग पर :

"हम ठगे गए लोग हैं/तुम्हारी दी हुई रोशनी/हम पर अँधेरे की उल्टियाँ करती हैं/गली, मुहल्ले, चौराहे भीड़ में/मुखौटे तैरते हैं तुम्हारे/तुम्हारे पास सुख की मरुभूमि है। वर्ध और हमारे पैर नंगे।"[28]

इस प्रकार आम आदमी भूमंडलीकरण से न केवल आहत, क्षत-विक्षत है बल्कि उसके बेहतरी के सपने, खुशी भी छिन गए हैं पर एक बात अहम है, उत्साहवर्धक भी कि भले ही वह श्रान्त-म्लान हो जाए, परन्तु बेहतरी की उसकी यात्रा निरन्तर जारी है :

"इस चिड़िया में/रोज झुग्गियों में बसने रोज उजड़ने वाले/इन्सानों का अरमान उनका हौसला नजर आता है/कभी-कभी चिड़िया लगती है उन्हीं की तरह अतिक्रमणकारी/उन्हीं की तरह सब कुछ खोकर भी नहीं थकती/उन्हीं की तरह आशियाना बनाती/तिनका भर उम्मीद से आतुर चिड़िया।"

## सन्दर्भ-संकेत


1. रमण कुमार सिंह : बाघ दुहने का कौशल, 2005, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2।
2. उपरिवत् 'कोहबर लिखती औरतें'।
3. तद्भव, लखनऊ, जुलाई 2009 का सम्पादकीय, पृ. 111।
4. महँगाई की मार : अश्वघोष, समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त 2007, पृ. 132.।
5. उपरिवत् बंजर जैसी, पृष्ठ 131।
6. उपरिवत् पृष्ठ 131.।
7. उपरिवत्, जाने कैसे चूक गए, पृष्ठ 133।
8. असुर वसन्त, कविता-संग्रह 'शुक्रतारा', 2006, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 2006।
9. उक्त संग्रह का 'नया मेघदूत'।
10. मदन केशरी : वैश्विक बाजार में लुप्त होने से पहले पटरी बाजार का एक शब्द चित्र, तद्भव, जुलाई 2009, पृष्ठ 121.।
11. उपरिवत् पृष्ठ 123
12. मदन केशरी : तेल के दागभरे कैलेंडर में चमकता मंगलवार का दिन, तद्भव, जुलाई 2009, पृष्ठ 123।
13. पंकज रागः यह भूमंडल की रात है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
14. पंकज रागः यह भूमंडल की रात है की समीक्षा, तद्भव, जुलाई 2009, पृष्ठ 219।
15. उपरिवत्।
16. उपरिवत् ।
17. खुरदुरी हथेलियाँ : अनामिका, 2005, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली की समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त 2007 में विजय वर्मा की समीक्षा।
18. खुरदुरी हथेली में 'गणतन्त्र' कविता।
19. शुक्रतारा : मदन वात्स्यायन।
20. एक तिल तुम्हारी आवाज में भी, समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई अगस्त 2007, पृष्ठ 139।
21. राजकुमार केसवानी : बाकी बचें जो, शिल्पायन, 2006, 10295 लेन नं.1 वेस्ट गोरखपार्क, दिल्ली, पृष्ठ 11।

21अ. एक नई पूरी सुबह, विश्वरंजन पर एकाग्र, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली,पृष्ठ 68।

22. जगदीश चतुर्वेदी की 75 कविताएँ : अनुभूति चुतर्वेदी, 2008, पल्लवी प्रकाशन, नई दिल्ली।
23. जगदीश चतुर्वेदी की 75 कविताएँ।
24. हरजेन्द्र चौधरी : मैं-पुत्र, समकालीन भारतीय साहित्य, जनवरी-फरवरी 2010, पृष्ठ 42।
25. उपरिवत्, पृष्ठ 42।
26. श्री प्रकाश शुक्ल : बोली बात, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, में 'पोतना' कविता, पृष्ठ 80।
27. हंस, अक्टूबर 2009, नई दिल्ली में नरेश मोहन की कविता 'सिर', पृष्ठ 48-49।
28. तुषार धवल : पहर ये बेपहर का, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

# बदलते दौर में साहित्य के सरोकार

**कृष्ण कुमार यादव***

साहित्य एक विस्तृत अवधारणा है। सभ्यता के आरम्भ से ही समाज की सभी भूमिकाओं को अपने में समेटकर उनका समाधान और उन पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए साहित्य का संजाल विस्तृत होता रहा है। कहा भी गया है कि साहित्य की यात्रा वहीं से आरम्भ होती है, जहाँ से संस्कृति की यात्रा। यही कारण है कि साहित्य और संस्कृति दोनों दीर्घकालीन हैं। किसी ने खूब कहा है कि कवि ईश्वर का रूप होता है'कविर्मनीषी परिभूः स्वयं भू।' वस्तुतः साहित्य के पास हर समस्या का निदान है और उसकी सोच नए तन्त्र का उद्भव करती है। साहित्य की सत्ता के समक्ष हर चुनौती विफल है।

साहित्य के सरोकारों को लेकर आज समाज में एक बहस छिड़ी हुई है। इस संक्रमण काल में कोई भी विधा मानवीय सरोकारों के बिना अधूरी है, सो साहित्य उससे अछूता कैसे रह सकता है। रीतिकालीन साहित्य से परे अब साहित्य में तमाम विचारधाराएँ सर उठाने लगी हैं या दूसरे शब्दों में समाज का हर वर्ग साहित्य में अपना स्थान सुनिश्चित करना चाहता है। यही कारण है कि नव-लेखन से लेकर दलित विमर्श, नारी विमर्श, बाल विमर्श जैसे तमाम आयाम साहित्य को प्रभावित कर रहे हैं। कभी साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता था, पर अब साहित्य की इस भूमिका पर ही प्रश्नचिह्न लगने लगे हैं। दर्पण का कार्य तो मात्र अपने सामने पड़ने वाली वस्तु का बिम्ब प्रदर्शित करना है, जबकि साहित्य इसी मायने में अलग है कि वह सिर्फ उन पहलुओं को नहीं देखता जो सामने से दिखती हैं बल्कि उनके पीछे की सच्चाइयों और अन्तर्विरोधों को उजागर करना भी उसका कर्तव्य है। ऐसे में आज साहित्य सिर्फ समाज का दर्पण मात्र नहीं, बल्कि उससे भी काफी विस्तृत है।

आज दलित साहित्यकार एवं नारीवादी साहित्यकार इस सवाल को बेबाकी से उठाते हैं कि साहित्य यदि समाज का दस्तावेज है तो इसमें दलितों और नारी की

* कृष्ण कुमार यादव, निदेशक, डाक सेवाएँ, अंडमान व निकोबार द्वीप समूह, पोर्टब्लेयर744101।



भूमिका कहाँ है? क्या दलितों की भूमिका शम्बूक बनकर गर्दन कटवाने, एकलव्य बनकर अँगूठा कटवाने, त्रिशंकु बनकर स्वर्ग व नर्क के बीच झूलते रहने अथवा ताड़ना का अधिकारी बनने में है। आर्य-अनार्य संस्कृति के बहाने दलितों को हेय बताकर साहित्य किस समभाव संस्कृति को प्रश्रय देता रहा है। राजाओं-महाराजाओं के हरम में सैकड़ों पटरानियों का उद्धरण देकर साहित्य नारी-विमर्श को बढ़ावा देता रहा है अथवा देह-विमर्श को। साहित्य की इतनी लम्बी कड़ी में ऐसे मानवीय सरोकारों के प्रति उसकी चुप्पी क्या साहित्य को कुछ लोगों की रखैल बनाकर रखने की नहीं दिखती। आखिर तुलसीदास ने क्यों लिखा किढोर, गँवार, शूद्र, पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी ॥ स्पष्ट है कि साहित्य कुछेक लोगों के हाथों का खिलौना बनकर रह गया और इन लोगों ने अपने हित में साहित्यिक सरोकारों की व्याख्या की और उन्हें परिभाषित किया। अन्यथा, यदि साहित्य ने इन मुद्दों को पहले उठाया होता, तो इस देश से जाति-प्रथा और छुआछूत कब का समाप्त हो गया होता।

दलित एवं नारी-विमर्श के बहाने साहित्य में लोकतांत्रिक और सामन्ती मूल्यों के बीच टकराव की स्थिति को महसूस किया जा सकता है। यथास्थितिवादी विमर्श के समानान्तर ही 'नारी विमर्श' और 'दलित विमर्श' खड़े हुए, जिनमें इन वर्ग विशेष के सामाजिक धरातल, यथार्थ और उनके मन की गहरी संवेदनाएँ प्रस्फुटित होती हैं। सवर्ण साहित्यकार दलित एवं नारी-विमर्श को छोटे-छोटे विमर्शों की आड़ में केन्द्रीय विमर्श से भटकाव की संज्ञा देते हैं एवं इसके लिए भोगे हुए यथार्थ को जरूरी नहीं मानते पर यथास्थितिवादी विमर्श के कायल ये सवर्ण साहित्यकार इस तथ्य की उपेक्षा करते हैं कि मात्र दया और सहानुभूति दिखाकर दलितों के साथ न्याय नहीं किया जा सकता। ऐसा नहीं है कि पुरुष, नारी-विमर्श पर एवं सवर्ण, दलित-विमर्श पर लेखन नहीं कर सकता, पर उनकी स्वयं की स्वानुभूति उन्हें एक अलग पहचान देती है। दलित साहित्य हेतु जरूरी है कि दलितों की आन्तरिक छटपटाहट को भी उसी रूप में उजागर किया जाए। भोगे हुए अनुभवों की प्रामाणिकता दलित साहित्य को जीवन्त बनाती है। साहित्य में वाल्मीकि, व्यास, रैदास, कबीर, अछूतानन्द की कड़ी में तमाम दलित साहित्यकार, लेखक एवं चिन्तक आदि आज अपनी आवाज मुखर कर रहे हैं, तो इस साहित्य में वे दलितों की आवाज ढूँढ़ रहे हैं। स्त्री के मजबूरी बने अंतरंग क्षणों को पन्नों पर अपनी कल्पनाओं का रंग देकर उसमें कुछ आधुनिकता व उत्तर आधुनिकता का 'देह-विमर्श' का रंग भरकर नारीवादी लेखन का मुलम्मा भरने वाले पुरुषों के विरुद्ध 'नारी-विमर्श' की आड़ में महिला साहित्यकार इसलिए आगे आ रही हैं, ताकि नारी को एक 'वस्तु' के रूप में पेश न किया जाए। इसी तरह बच्चों के समग्र विकास में बाल साहित्य की सदैव से प्रमुख भूमिका रही है। बाल साहित्य एक तरफ जहाँ मनोरंजन के पल मुहैया कराता है वहीं बाल मनोविज्ञान व बाल मनोभाव के समावेश द्वारा सामाजिक सृजन के दायरे भी खोलता है। बाल साहित्य बच्चों को

उनके परिवेश, सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराओं, संस्कारों, जीवन मूल्य, आचार-विचार और व्यवहार के प्रति सतत चेतन बनाने में अपनी भूमिका निभाता आया है। परन्तु आज बाल साहित्य के क्षेत्र में यह सवाल तेजी से उठने लगा है कि बच्चों की ग्राह्य क्षमता, मानसिकता और परिवेश में जिस तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं, उनके अनुरूप बाल साहित्य नहीं रचा जा रहा है। ज्यादातर पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों को बाल साहित्य की समझ ही नहीं और वे जो कुछ छापते हैं लोग उसे ही बाल साहित्य समझ कर उसका अनुसरण करने लग जाते हैं, जिससे बाल साहित्य की स्तरीयता प्रभावित होती है। इन पत्रिकाओं में बाल साहित्य आधारित दूरदर्शी सोच का अभाव है। ऐसे में जरूरत है कि बाल साहित्यकार रचनाओं में मनोरंजकता के पुट के साथ सुनिश्चित करें कि उनसे किसी अंधविश्वास, कुसंस्कार, कुरीति व अभद्रता को प्रश्रय न मिले। यह नहीं भूलना चाहिए कि बच्चे आनेवाले कल के कर्णधार हैं और बच्चों को प्राप्त शिक्षा, संस्कार और सामाजिक मूल्य ही कल के राष्ट्र का निर्माण करेंगे। इस क्षेत्र में बाल साहित्य की प्रमुख भूमिका है।

साहित्य पर आज तमाम तरह के संकट मँडरा रहे हैं। समाज की समस्याएँ उठाने की बजाय साहित्य अपने ही रूपकों में ढल रहा है, जो कि समाज और साहित्य दोनों के लिए उचित नहीं ठहराए जा सकते। बढ़ती व्यावसायिकता के दौर में पुरस्कारों हेतु साहित्यकारों का राजनीतिकों के पीछे भागना, लिखने की अपेक्षा छपना ज्यादा महत्त्वपूर्ण होना, रचना किसी कीनाम किसी का, साहित्यिक संस्थाओं की आपसी गुटबंदी, साहित्यकारों द्वारा एक-दूसरे पर कीचड़ उछालना एवं वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर साहित्यकारों द्वारा दोहरा जीवन जीने जैसे तमाम तत्त्व साहित्य को अवमूल्यन की तरफ ले जा रहे हैं। साहित्य सम्राट प्रेमचन्द ने समाज की विसंगतियों पर खूब कलम चलाई एवं तमाम ढपोरशंखियों को उनका असली चेहरा दिखाया। पर यह भी एक सच्चाई है कि प्रेमचन्द ने एक विधवा से शादी कर वाहवाही तो लूट ली पर उसे यह नहीं बताया कि उनकी पहले भी शादी हो चुकी है। यही नहीं जब उनकी दूसरी पत्नी के सामने असलियत उजागर हो गई तो उनके बार-बार आग्रह के बावजूद भी उन्हें अपनी पहली पत्नी से नहीं मिलवाया। यही बात राहुल सांकृत्यायन के बारे में भी कही जा सकती है कि राहुल पूरी दुनिया घूम आए और तीन शादियाँ की पर अपनी पहली पत्नी को वे घर लौटने पर पहचान भी नहीं पाए...। क्या इन महान् विद्वानों व साहित्य के प्रतिष्ठित साधकों द्वारा एक तरफ अपने साहित्य में सामाजिक अन्तर्विरोधों और सच्चाइयों को बेनकाब करना और दूसरी तरफ स्वयं के सम्बन्ध में मौन रहना क्या स्वयं में अन्तर्विरोध नहीं है। ऐसे में कुछ लोगों के इस कथन से कि नए साहित्यकारों को अनुभव का विस्तृत क्षेत्र तो मिला है परन्तु संवेदनात्मक सहजता और अनुभव के साथ आत्मीयता बनाए रखने का वह गुण विरल हो गया है जो पिछली पीढ़ी के वरिष्ठ रचनाकारों में था, से सहमति जताना थोड़ा मुश्किल लगता है।



वस्तुतः समाज में विविधता है और इसी के अनुसार सबकी जीने की परिस्थितियाँ है। जो व्यक्ति जिस माहौल में जीता है, उसके लिए वही यथार्थ है और अन्य घटनाएँ अर्थहीन। परन्तु साहित्य सभी परिस्थितियों को समान भाव से देखता है। ऐसे में जरूरी है कि आज के सामाजिक अन्तर्विरोधों व सच्चाइयों के व्यापक परिप्रेक्ष्य में समकालीन साहित्य का मानवीय संवेदना से गहरा जुड़ाव हो। किसी वर्कशॉप में तैयार किए गए सुन्दर उत्पाद के रूप में गढ़े हुए साहित्य को आज के समाज के प्रतिनिधि साहित्य का दर्जा नहीं दिया जा सकता।

नई पीढ़ी के साहित्यकार सूचना एवं संचार क्रान्ति के इस युग में समय का मूल्य भली-भाँति समझते हैं और रात भर जागकर पन्ने खर्च करने में विश्वास नहीं करते बल्कि अर्थव्यवस्था के नियमों की तरह वह माँग आधारित व्यवस्था में विश्वास करते हैं। शायद यही कारण है कि आज लिखने के बजाय छपना ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है। कोई यह नहीं पूछता कि आपने अभी तक लिखा कितना है। बल्कि सीधा-सा सवाल होता है कि आप किन पत्र-पत्रिकाओं में और किन लोगों के साथ छपे हैं। तमाम लेखकीय संगठनों एवं सम्पादकों की भी इस सम्बन्ध में अहम भूमिका है। यही कारण है कि एक साहित्यकार किसी पत्रिका में धड़ल्ले से छपता है पर दूसरी जगह उसकी पूछ ही नहीं होती। स्पष्ट शब्दों में कहें तो रचनाधर्मिता के ऊपर सम्पादक हावी हैं, जो यह निर्णय करते हैं कि पुरातन क्या है और आधुनिक या उत्तर आधुनिक क्या है? इसी फार्मूले पर चलते हुए साहित्यकार भी वही लिखता है जो लोगों को पसन्द आए। नतीजतन अपनी संवेदनशीलता और अभिव्यक्ति को अधिक प्रामाणिक बनाने के लिए वह कहानी में अनेक प्रकार के ज्ञान-विमर्श, सामयिक समझदारी को भरकर एक अच्छा-खासा सैण्डविच तैयार करने की कोशिश करता है। एक समालोचक के शब्दों पर गौर करें"किसी महत्त्वाकांक्षी चतुर लेखक के पास अनुभूतियाँ नहीं होतीं अथवा वाह्य दबावों या आन्तरिक बचावों के कारण वह अपनी सच्ची अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का साहस नहीं कर पाता, इसलिए अपनी प्रतिभा का सिक्का मनवाने या पाठकों को चौंकाने के लिए वह क्लिष्ट और दुरूह या फिर चतुराईपूर्ण और स्मार्ट भाषा का प्रयोग करता है। विदेशी साहित्यिक प्रवृत्तियों से आक्रांत उन्मुक्त लेखन करने वाले युवक लेखकों में भाषा के इन स्मार्ट प्रयोगों की बहुलता है।" ऐसे में संवेदनात्मक सहजता व अनुभवीय आत्मीयता कहाँ से आएगी? यही कारण है कि साहित्य लोकप्रिय होने की बजाय अभी भी जटिल उपमानों और रूपकों में उलझा हुआ है। साहित्य के अधिकतर प्रकाशक सामान्य जन के लिए पुस्तकें नहीं छापते बल्कि सरकारी पुस्तकालयों की खरीद के लिए छापते हैं। जो नामचीन साहित्यकार हैं, उनकी पुस्तकें इतनी महँगी होती हैं कि सामान्य जन की हैसियत के बाहर हैं। अधिकतर समकालीन साहित्यकार सामान्य जन की बजाय वर्ग विशेष को ध्यान में रखकर लिख रहे हैं, जो कि स्वयं में एक अन्तर्विरोध है।

किसी भी साहित्यकार के लिए दो बातें महत्त्वपूर्ण होती हैं। प्रथमतः, उसका परिवेश और द्वितीयतः, पहचाने जाने की इच्छा। साहित्यकार इन दोनों के अन्तर्द्वन्द्वों से जूझता है, क्योंकि वह स्वतः सुखाय नहीं रचता। क्या वरिष्ठ साहित्यकार इससे असहमति जता सकेंगे कि जब वे निर्णायक मण्डल में होते हैं तो अधिकतर ऐसे ही लोगों को क्यों पुरस्कृत करने का फैसला लेते हैं, जो कहीं-न-कहीं किसी रूप में किसी पत्र-पत्रिका के सम्पादन से जुड़े हुए हैं। इनमें से अधिकतर उनसे किसी-न-किसी रूप में रू-ब-रू हुए रहते हैं। क्या यह माना जाय कि किसी पत्र-पत्रिका से जुड़े रहना एक अच्छा साहित्यकार होने की निशानी है? यही कारण है कि आज साहित्य में जिस तरह सम्मान या पुरस्कार दिए जाते हैं, ज्यादातर अविश्वसनीय एवं सन्दिग्ध होते हैं। यह स्वयं में शोध का विषय है कि आज पूरे भारतवर्ष में किस साहित्यकार के नाम पर कितने पुरस्कार दिए जा रहे हैं। हाल ही में 'इण्डियन आइडल' चुने गए अभिजीत सावंत पर जब एक पुस्तक प्रकाशित की गई तो उसमें उनके जीवन के उन स्याह पक्षों को नहीं बताया गया जब वे इण्डियन आइडल नहीं बने थे, आखिर क्यों? क्या इसलिए कि नायक कभी कमजोर नहीं होता और उसके जीवन में सब कुछ अच्छा ही घटित होना चाहिए। हमारे साहित्यकार भी कहीं-न-कहीं इस अन्तर्विरोध के शिकार हैं और इसीलिए स्वयं की मानवीय संवेदनाओं की बजाय उधार की संवेदनाएँ उन्हें ज्यादा प्रभावित करती हैं। वस्तुतः आज साहित्य भी आकर्षक पैकिंग के साथ माल के रूप में बाजार में बेचा जा रहा है। अभी कुछ दिनों पहले एक प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका ने युवा केन्द्रित विशेषांक में एक कहानी प्रकाशित की थी जिसमें नायक जो कि एक छात्र है, को अपनी दूर के रिश्ते वाली बुआ से विशेष लगाव हो जाता है और अन्ततः यह लगाव दैहिक संसर्ग में बदल जाता है। युवा कहानीकार बार-बार अपनी साइकिल और बुआ के रिश्तों को जोड़कर कहानी आगे बढ़ाता है और कहानी के अधिकतर भाग में यह दोहराव ही ज्यादा है। अब यह तो सम्पादकीय मण्डल के सदस्य ही बता पाएँगे कि साइकिल के काले डंडे की बुआ के शरीर के रंग से तुलना करती दैहिक संसर्ग पर खत्म इस कहानी का भावार्थ क्या है। देह-विमर्श पर आधारित यह कहानी साहित्यिक संवेदना के किन उच्च स्तरों को जीवन्त रखने का प्रयास है। पत्रिका के पन्ने पलटकर देखा तो उस युवा कहानीकार को उसी पत्रिका के सम्पादन से जुड़ा हुआ पाया। ऐसे में वर्तमान साहित्य की दशा और दिशा का अन्दाजा स्वतः लगाया जा सकता है कि वह किस ओर उन्मुख है।

वस्तुतः साहित्य को संवेदना के उच्च स्तर को जीवन्त रखते हुए समकालीन समाज के विभिन्न अन्तर्विरोधों को अपने आप में समेटकर देखना चाहिए एवं साहित्यकार के सत्य और समाज के सत्य को मानवीय संवेदना की गहराई से भी जोड़ने का प्रयास करना चाहिए। संवेदना की अपनी परिभाषाएँ हैं। जब कोई प्रेमी किसी पर रीझता है तो उसकी अपनी संवेदनाएँ हैं पर इसके चलते प्रेमिका को परिवार



व समाज में जो सहना पड़ता है उसकी अपनी संवेदनाएँ हैं। ये संवेदनाएँ अन्तर्विरोधी भी हो सकती हैं, इसलिए यहाँ पर 'संवेदना के उच्च स्तर' वाक्य का इस्तेमाल किया है। जरूरत है कि समकालीन साहित्यकार इस भावना को समझें और बाजारवाद की अंधी दौड़ का अनुसरण करने की बजाय उसके पीछे व्याप्त सच्चाइयों व अन्तर्विरोधों को सामने लाएँ तथा उसका शिकार होने की बजाय एक अच्छे साहित्यकार की भाँति स्वयं को उस मानवीय संवेदना से जोड़ने का प्रयास करें। साहित्य का उद्भव ही संवेदनाओं से होता है। यह एक अलग तथ्य है कि कोई संवेदना सुप्त होती है, कोई अर्धविकसित तो कोई पूर्णतया विकसित होती है। संवेदनाओं के इन स्तर के आधार पर ही वर्तमान साहित्य को विभिन्न श्रेणियों में रखा जाता है और संवेदनाओं का यही स्तर साहित्य की दशा और दिशा निर्धारित करता है। ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कश्मीरी साहित्यकार डॉ. रहमान राही के शब्दों में"साहित्य आदमी को आदमी बनाता है। यही गलत को बदलने का एहसास कराता है। नतीजा यह होता है कि उसका इंसान के व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। व्यवस्था बदलाव के लिए सियासी नारे की जरूरत नहीं होती, सियासी नारे तो हर साल बदल जाते हैं। जरूरत इंसान की सोच बदलने की है और साहित्य यह सोच बदलने की काबिलियत रखता है।"

# अनुवाद : एक परिचर्चापूर्वोत्तर क्षेत्र की भाषाओं के सन्दर्भ में

**दिनेश कुमार चौबे***

'अनुवाद' शब्द का सम्बन्ध 'पुनरावृत्ति' से है जो एक भाषा से दूसरी भाषा में होती है। अनुवाद मूल रचना को दूसरी भाषा में प्रस्तुत करता है। 'एक भाषा में प्रकट किए गए भावों-विचारों को ज्यों का त्यों दूसरी भाषा में प्रकट करने को अनुवाद कहते हैं।' कहे हुए को फिर से कहने में दो महत्त्वपूर्ण पक्ष हैंउसका विषय (कथ्य) और भाषा। कथ्य को अच्छी तरह समझने के लिए किसी भी अनुवादक को विषय और भाषा दोनों की बहुत अच्छी जानकारी होनी चाहिए। मूल रचना के भाव, विचार या संदेश को ज्यों का त्यों बिना घटाए-बढ़ाए वही प्रभाव डालते हुए दूसरी भाषा में कहना अनुवादक का कर्तव्य होता है। दो भिन्न भाषा-भाषी समुदायों के बीच विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए अनुवादक मध्यस्थ की भूमिका निभाता है।

अनुवाद एक कला है। कला के अन्य रूपों की भाँति इसमें भी कुशल होने के लिए परिश्रम एवं निष्ठा की आवश्यकता है। यह सृजनशील लेखन से किसी भी तरह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वस्तुतः मौलिक लेखन से अनुवाद अधिक दुःसाध्य एवं क्लिष्ट कार्य है। अनुवादक का उत्तरदायित्व दोहरा होता है उसे एक ओर मूल पाठ के प्रति निष्ठावान रहना है, साथ ही मूल लेखक के भाव-शैली को यथासाध्य प्रतिधारित करना है, तो दूसरी ओर उसे अपना कौशल एवं कला भी दर्शानी होती है। अनुवादक एक सेतु की भूमिका निभाने के कारण दो भाषाओं, भाषाओं के दोनों साहित्यों, दो संस्कृतियों-सभ्यताओं तथा सामाजिक भाव-बोध को अनुवाद के माध्यम से पाटने का कठिन दायित्व पूरा करता है। इसके लिए अनुवादक को स्रोत एवं लक्ष्य दोनों भाषाओं के साथ उनकी सम या विषम संस्कृतियों तथा समाजों का पूरा ज्ञान होना चाहिए। स्रोत भाषा (मूल भाषा) वह है जिससे अनुवाद किया जाता है और वह

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग-22, फो. 0364-2550139, मो. 09436312134



भाषा जिसमें अनुवाद किया जाता है लक्ष्य भाषा कहलाती है। यदि अनुवादक असमिया/खासी के मूल पाठ को हिन्दी में रूपान्तरित करता है तो असमिया/खासी स्रोत भाषा और हिन्दी लक्ष्य भाषा कहलाएगी।

चूँकि प्रत्येक भाषा का अपना पृथक् अस्तित्व होता है, उसकी अपनी विशिष्ट संरचना होती है, एक विशिष्ट शैली होती है, इसलिए अनुवादक को अनुवाद करते समय स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की प्रवृत्ति को दृष्टि में रखकर उनकी भिन्नताओं एवं समस्याओं को समझकर अनुवाद-प्रक्रिया में प्रवृत्त होना पड़ता है। यथा असमी के कुछ वाक्य देखें :

1. मई कितापखन पढ़िसों।
   मैं पुस्तक पढ़ता हूँ।
2. मईं कलों हि अहिबो ना लागे।
   मैंने कहा उसे नहीं आना चाहिए।
3. तुमि जाबा देईं।
   ठीक है, तुम जाना।

यहाँ कथन की शैली, भाव पर भाषा की प्रवृत्ति को ध्यान में रखना आवश्यक है। तीसरे वाक्य में 'देईं' शब्द प्यार से जोर देकर कहा गया है जो हिन्दी में 'ठीक है' कहकर ही समझाया जा सकता है।

असमिया भाषा के अनुभूतिपरक या स्वराघात की प्रवृत्ति को अनुवादक को समझना चाहिए। यथाबारू, देई, सोन।

कोवा सोन बारूठीक है बोलो। आको आहिबा देईफिर जरूर आनाअच्छा।

तुम काइलैई तात जाबा सोनतुम कल वहाँ जाना तो जरा। खासी में 'म' की तुलना असमिया के 'बारू' से की जा सकती है।

ऊ ता शिम इआ का जनी कुप जोङ म'उसने मेरा शाल लिया है, हाँ।

**अनुवाद प्रक्रिया के दो चरण प्रमुख हैं**

(क) अर्थ ग्रहणमूल रचना का अर्थ ग्रहण करना (समझना)

(ख) सम्प्रेषणदूसरे तक पहुँचाने के लिए अपनी भाषा में वही बात कहना (कहना) समझने की प्रक्रिया ऐसी है जिससे हर सजग पाठक भी गुजरता है। कथा साहित्य पढ़ते समय एकाध शब्द के अर्थ स्पष्ट न होने पर भी समझ में बहुत प्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु अनुवादक को यह स्वतन्त्रता नहीं है। वह कुछ भी जोड़ने-घटाने का अधिकार नहीं रखता।

**शब्द बोध**अर्थ ग्रहण के लिए अनूदित रचना को ठीक से पढ़कर क्लिष्ट शब्दों के अर्थ को शब्दकोश की सहायता से प्रसंगानुसार समझना आवश्यक है।

**उदाहरण :** My brother is under treatment of Dr. Dkhar चिकित्सा
His treatment of the subject is one sided प्रतिपादन

**वाक्य बोध :** वाक्यों में शब्द क्रम पूर्ण वाक्य पढ़कर अर्थ का बोध होता है। अनुवाद शब्द की जगह शब्द नहीं रखने से नहीं होता।

**उदाहरण :** वह इस कार्य में कुशल है।

He is expert in this field.

**रचना-बोध :** अनुवादित रचना का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। रचना का अनुवाद होता है शब्दों या वाक्यों का नहीं। अनुवाद की प्रथम प्रक्रिया अर्थग्रहण में तीन मूलभूत बातें होती हैं

(1) शब्द का सही ज्ञान
(2) शब्दों का उचित प्रयोग ताकि वाक्य का सही अर्थ स्पष्ट हो और
(3) रचना या विषय की सही जानकारी; साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक परिवेश की जानकारी।

**सम्प्रेषण :** अनुवादक की कुशलता इस बात में है कि वह अपने पाठकों के मन पर वही और वैसा प्रभाव डालने में सफल होता है जैसा मूल लेखक की कृति ने पाठकों के मन में डाला होगा। शब्द की समतुल्यता के सिद्धान्त में समतुल्यता सबसे पहले शब्द के स्तर पर सिद्ध करनी होती है। शब्दों के पर्याय न मिलने पर समान अर्थ देने वाले प्रसंगानुसार शब्द चुनना चाहिए। क्लिष्ट शब्दों में सावधानी की आवश्यकता है। pay चुकाना, कष्ट सहना, यातना भोगना।

**वाक्य की समानार्थकता :** अनुवादक को सही और समानार्थक वाक्य बनाने की क्षमता होनी चाहिए।

It was a pleasant surprise to me.

'इसमें मुझे एक सुखद आश्चर्य हुआ।' की जगह उचित है :

इसमें मुझे आश्चर्य भी हुआ और आनन्द भी।

एइटो मोर बावे बर आनन्द आरू आश्चर्य।

**रचना की समानार्थकता :** अनुवादक को अनूदित रचना को एक स्वतन्त्र रचना या अवतरण मानकर पठनीय बनाना चाहिए ताकि उसमें धारा-प्रवाह खण्डित न हो पाए।

**अनुवाद के कई भेद हैं :** भावानुवाद, सारानुवाद, स्वतन्त्र अनुवाद, साहित्यिक अनुवाद आदि।

**भावानुवाद :** यह अर्थ व्यंजना के आधार पर किया गया अनुवाद है। इसमें मूल कृति के विचार क्रम का अनुसरण करना आवश्यक है। इस विचार क्रम को प्रस्तुत करने वाले विवरणों को विस्तार देने की आवश्यकता नहीं होती। यहाँ ध्यातव्य है कि अनुवाद का उद्देश्य शब्दार्थ प्रस्तुत करना नहीं वरन् संकेतार्थ प्रस्तुत करना है। भावानुवाद में एक प्रकार की मौलिकता होती है।



**सारानुवाद :** स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में क्रमबद्ध और संक्षेप में किए गए सार (मूल) के अनुवाद को सारानुवाद कहते हैं जो मूल कृति के मुख्य कथ्य को प्रकट करता है। इसमें सबसे पहले अर्थ ग्रहण की आवश्यकता होती है। इसमें पाठ का सार मूल भाषा में तैयार किया जाता है तत्पश्चात उस सारांश का लक्ष्य भाषा में अनुवाद किया जाता है।

**स्वतन्त्र अनुवाद :** स्वतन्त्र अनुवाद में अनुवादक मूल भाषा में कही बात को अपने ढंग से कहने की पूरी छूट ले सकता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि कहने के क्रम में कोई दूसरी बात या विरोधी बात कही जाए।

**उदाहरण :** Refering to Prime Minister's statement regarding kidnapped women Mr. X said.

प्रधानमन्त्री द्वारा भगाई गई औरतों के बारे में दिए गए वक्तव्यों का हवाला देते हुए मिस्टर एक्स ने कहा। (गलत) मिस्टर एक्स ने अपहृत महिलाओं के सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री के बयान के प्रसंग में कहा।

**साहित्यिक अनुवाद :** इसमें कल्पना शक्ति एवं सर्जनात्मक क्षमता की अपेक्षा होती है। इसमें भावानुवाद पर बल दिया जाता है, शब्दानुवाद पर नहीं। इसके लिए दोनों भाषाओं की पकड़ अनुवादक को होनी चाहिए। साथ ही मूल रचना की प्रवृत्ति और प्रस्तुति की भी अच्छी जानकारी होनी चाहिए। अरुणाचल प्रदेश में लुमेरदाई कृत 'कइनार मूल्य' 'Bride Price' से 'कन्या का मूल्य' में वहाँ की सामाजिक-सांस्कृतिक ज्ञान अनुवाद के लिए आवश्यक है। गारो में बंगला 'कृतवासी रामायण' का अनुवाद इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। मणिपुर में इबोहल सिंह कांङजम, अरुणाचल में ताखेकानी के गालो से अनुवाद उल्लेखनीय हैं।

इस तरह के अनुवाद में साहित्यिक कृति में प्रयुक्त मुहावरों, लोकोक्तियों को अपनी भाषा में ढालना या उसके स्थान पर लक्ष्य भाषा के मुहावरों, कहावतों का इस प्रकार प्रयोग करना कि वह अनूदित भाषा में सटीक बैठे यह अति महत्त्वपूर्ण होता है।

**अनुवाद की सीमाएँ : सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य :** भाषा और संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यहाँ संस्कृति का व्यापक अर्थ में प्रयोग है। संस्कृति का भौतिक रूप (खान-पान, आचार-विचार, दृष्टि परम्पराएँ) दोनों सम्मिलित हैं। अनुवाद में सामाजिक-सांस्कृतिक सीमाएँ वहाँ खड़ी होती हैं जहाँ स्रोत भाषा की सांस्कृतिक विशेषताएँ लक्ष्य भाषा की संस्कृति में विद्यमान नहीं होतीं।

असमिया भाषा के सांस्कृतिक देशज शब्दपोन, गुछि, विहुवान, बरकापोर, लाओपानी, रिंगोरबाट (कम दूरी का रास्ता) दिकसौ बाट (अधिक दूरी का रास्ता) सम्बन्धों के नाम जेठा, जेठाई, पेहा, पेही (हिन्दी में फूफा, फुवा, बुआ), सालपति, जेठपति (दोनों के लिए साढ़ू), आदि।

सर्वनाम एऊँ, एखेतये; सि, इवह

विशेषण-विशेष्य : पानी केंचुआ (सबसे छोटा बच्चा) एकुरी मानूह (बीस व्यक्ति)

इस प्रकार के शब्दों का हिन्दी में अनुवाद नहीं किया जा सकता। ऐसे शब्दों के पीछे एक सुदीर्घ परम्परा होती है, एक खास माहौल का बोध होता है। इसका शब्दानुवाद करने से सांस्कृतिक सन्दर्भ नष्ट हो जाने की आशंका रहती है। अंग्रेजी में ताऊ, फूफा, मौसा सभी के लिए एक शब्द Uncle; चचेरा भाई, चचेरी बहन, मौसेरा भाई, ममेरी बहन, ममेरा भाई Cousin. प्रयुक्त होता है।

**(ख) क्षेत्रीय सीमाएँ :** भाषाओं में ध्वनि व्यवस्था, शब्द-भण्डार, रूप रचना, वाक्य रचना का अन्तर अनुवाद के लिए कठिनाई भरी चुनौती पैदा करता है। यथागरू-असमिया में पशु के साथ मूर्ख का द्योतक है। हिन्दी में पशु वृहस्पति तमिल में मूर्ख या नासमझ, हिन्दी में बुद्धिमान।

कनकपंजाबी में गेहूँ, हिन्दी में स्वर्ण।

मिथुनअरुणाचल में पशु विशेष, हिन्दी में नर-मादा, स्त्री-पुरुष का जोड़ा, राशि विशेष का नाम

खुबलेईखासी में अभिवादन और कृतज्ञता ज्ञापनहिन्दी में धन्यवाद।

आज के अनुवाद जगत की दुखद स्थिति यह है कि भारतीय भाषाओं के अंग्रेजी अनुवादक अनेक हैं किन्तु एक भारतीय भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने वालों की संख्या ऊँगली पर गिनी जा सकती है। असमिया भाषी यदि आदि या मणिपुरी, या गारो में अनुवाद करे तो स्थिति सुधरेगी। यहाँ तक कि प्रायः अंग्रेजी अनुवाद को मास्टर कापी की तरह प्रयोग किया जाता है। कई नामी-गिरामी संस्थाएँ भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद करने के लिए अंग्रेजी अनुवाद को सेतु बनाती हैं। इसका एक कारण यह है कि भारतीय भाषाओं को सीखने सिखाने की ओर गम्भीर प्रयास नहीं किए जा रहे हैं। इस दिशा में मीडिया की भूमिका महत्त्वपूर्ण साबित हो सकती है। भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद प्रारम्भ करने की आवश्यकता है। प्रचार माध्यम में दूरदर्शन क्षेत्रीय भाषाओं में प्रस्तुति कर अनुवादकों को प्रोत्साहित करे। हर विश्वविद्यालय में अन्तर्भारतीय भाषाओं के अनुवाद और प्रकाशन की सुविधा हो। प्रशासनिक स्तर पर इस दिशा में कार्य किए जाएँ तो अपने देश में अनुवाद के लिए अंग्रेजी की बैसाखी की जरूरत नहीं पड़ेगी। पाठ्य-पुस्तकों, व्याकरण एवं शब्द-कोश निर्माण में भी क्षेत्रीय भाषाओं की प्रकृति का ध्यान रखा जाना आवश्यक है।



# वैश्विक परिप्रेक्ष्य में 'हिन्दी' का अन्तर्जालीय परिदृश्य

**भाऊसाहेब नवनाथ नवले***

सूचना प्रौद्योगिकी एवं वैज्ञानिक तकनीकी संसाधनों ने पूरी दुनिया को प्रभावित किया है। इन संसाधनों के सकारात्मक परिवर्तन की चाहत वर्तमान समय एवं समाज के केन्द्र में रही है। कहना सही होगा कि वैश्वीकरण एवं भूमंडलीकरण की चुनौतियों का हर क्षेत्र पर प्रभाव दिखाई देता है। वस्तुतः इक्कीसवीं सदी को हाईटेक तथा विज्ञान युग के रूप में सम्बोधित किया जाता है। नित-नए होते वैज्ञानिक आविष्कार एवं नई तकनीकी व्यवस्था से भारवतर्ष का आम समाज ही नहीं अपितु पूरा वैश्विक धरातल किसी-न-किसी रूप में लाभान्वित हो रहा है। विज्ञान, कृषि, चिकित्सा, राजनीति, आर्थिक परिवेश, धर्म, संस्कृति, सुरक्षा, संचार माध्यम एवं समाज का प्रत्येक अंग वैज्ञानिक आविष्कारों के केन्द्र में है। विज्ञान के असीम आविष्करणों का ही परिणाम है कि वर्तमान में जनसंचार माध्यमों के बदलते परिवेश एवं प्रकृति की व्यापक धरातल पर अभिव्यक्ति हो रही है। कहना गलत न होगा कि 'वसुधैव कुटुंबकम्' की परिकल्पना को जनसंचार माध्यमों के कारण संजीवनी मिल रही है। मानव समाज को जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य इन्हीं माध्यमों ने किया है। प्रिंट मीडिया से लेकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तक के सभी संचार माध्यमों के केन्द्र में, 'मानव समाज' ही रहा है। ये माध्यम मानव विकास के विविध आयामों के साथ-साथ, मानव की कमियों एवं खामियों को बेबाकी के साथ अभिव्यक्ति देने के कारगर माध्यम के रूप में अहम दायित्व निभा रहे हैं। गौरतलब है कि वर्तमान में वैश्वीकरण को लेकर काफी चिन्ताएँ जतायी जाती हैं। लेकिन ध्यातव्य बात यह कि विकास के अन्यान्य सोपान भी उसी वैश्वीकरण की देन हैं।

* डॉ. भाऊसाहेब नवनाथ नवले, परियोजना सहायक, बृहत् हिन्दी शोध परियोजना (यू.जी.सी); हिन्दी विभाग, महावीर महाविद्यालय, कोल्हापुर; ई-मेल : bhausahebnavale83@gmail.com, Mo. 9922807085.

आधुनिक जनसंचार माध्यमों में आकाशवाणी, रेडियो, वीडियो कैसेट, सी.डी., दूरदर्शन, मोडम, फोटो कॉपियर, प्रिंटर, सेल्युलर, साइबर स्पेस, पेजर, मल्टीमीडिया, हिन्दी सिनेमा, पत्र-पत्रिकाएँ, किताबें, अन्तर्जाल (इंटरनेट), फैक्स, मोबाइल, टेलीफोन आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यह युग सूचना प्रौद्योगिकी और नई तकनीकी क्रान्ति का है। "पहली बार 1977 में हैदराबाद की एक कम्पनी ई.सी.आई.एल. ने हिन्दी में 'फोट्रॉन' नामक कम्प्यूटर भाषा में एक छोटा-सा प्रोग्राम चलाकर लोगों के समक्ष पेश किया।"[1] स्पष्ट है कि हिन्दी ने चौंतीस साल पहले ही कम्प्यूटर में स्थान पाया है। वस्तुतः कम्प्यूटर के पर्दे पर हिन्दी अक्षरों का प्रयोग पहली बार यहीं से प्रारम्भ हुआ। आज के हिन्दी के अन्तर्जालीय परिदृश्य के अवलोकन के पश्चात् कहा जा सकता है कि हिन्दी ने शुरू से ही अपने आलेख को उन्नत बनाया है।

संचार माध्यमों के विकास का यह पहला दौर अवश्य है, लेकिन भविष्य में इसके विकास की गतिशीलता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। उन्नत संचार व्यवस्था के कारण ही सम्पूर्ण विश्व को 'विश्वग्राम' में परिवर्तित करने की संकल्पना ने जोर पकड़ लिया है। स्वाधीनता आन्दोलन से लेकर आज तक प्रिंट मीडिया ने हिन्दी को ग्राम से लेकर वैश्विक धरातल तक अभिव्यक्ति देने का सराहनीय प्रयास किया है। इलेक्ट्रॉनिक संचार साधनों ने तो वैश्विक सीमाओं को लाँघ दिया है। सुरेश कुमार का मानना है कि "हिन्दी वेबसाइटें आगे चलकर व्यापक होने पर समाज को प्रभावित करेंगी और समाजशास्त्रियों की मानें तो सूचना प्रौद्योगिकी के इस नए युग में साधारण लोगों पर इसका जबर्दस्त प्रभाव पड़ेगा।"[2] कहना गलत न होगा कि हिन्दी को वैश्विक तथा व्यापक धरातल प्रदान करने में ही नहीं अपितु आम जन तक पहुँचाने में अन्तर्जालीय परिदृश्य ने महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाया है, इस सच्चाई को स्वीकार करना पड़ता है। प्रस्तुत आलेख में मैंने हिन्दी के हाईटेक युगीन अन्तर्जालीय परिदृश्य को वाणी देने की कोशिश की है।

## हिन्दी का अन्तर्जालीय स्वरूप :

सूचना प्रौद्योगिकी क्रान्ति के कारण भारतीय भाषाओं को अब वेब पर पर्याप्त संभावनाओं के साथ तथा व्यापक धरातल पर अभिव्यक्ति मिल रही है। मराठी, हिन्दी, उर्दू, तेलुगू, कन्नड़, सिन्धी तथा पंजाबी आदि अन्यान्य भाषाओं को इंटरनेट पर देखा और पढ़ा जा सकता है। हिन्दी का अन्तर्जालीय वैश्विक परिदृश्य निश्चित ही समृद्ध है। भले ही वह अंग्रेजी भाषा की तुलना में कम समृद्ध हो। आज विभिन्न रूपों में हिन्दी इंटरनेट पर हावी है। भारतवासियों ने तो हिन्दी के अन्तर्जालीय वैभिन्यपूर्ण स्वरूप को स्वीकार किया ही है, लेकिन विदेशियों में भी हिन्दी के प्रति अपनी असीम आस्था दिखाने की बेबाक कोशिश की हुई दिखाई देती है। विदेशी कम्पनियाँ भी व्यापार वृद्धि हेतु हिन्दी के प्रति आवश्यकता के रूप में ही क्यों न हो



लेकिन सहर्ष आकर्षित हो रही हैं। शुरुआती दिनों में हिन्दी के इंटरनेट प्रयोगकर्त्ताओं के मन में आशंकाएँ बनी रहती थीं। लेकिन वर्तमान में हिन्दी और इंटरनेट सम्बन्धों को परखने से स्पष्ट होता है कि हिन्दी इंटरनेट प्रयोगकर्ताओं में आज सभी शंकाओं का समाधान पाया जाता है। मनीषा कुलश्रेष्ठ का मानना है कि "आम आदमी हिन्दी में इंटरनेट पर जानकारियों के अनुपलब्ध होने की वजह से इंटरनेट को हौव्वा समझता था, लेकिन आज हिन्दी पोर्टल एक हद तक आम आदमी की पहुँच में आ रहे हैं।"[3] स्पष्टतः वर्तमान में इंटरनेट पर हिन्दी की नहीं अपितु विभिन्न विषयों की हिन्दी में जानकारी पाना सहज एवं सुलभ हुआ है। इसमें वह साहित्य की जानकारी के साथ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं की जानकारी भी प्राप्त कर सकता है।

वस्तुतः संचार माध्यमों का परिणाम दूरगामी होता है। वेब दुनिया, जागरण, प्रभासाक्षी, बी.बी.सी. के दैनिक पाठकों की संख्या लगभग 20 से 25 लाख प्रतिदिन है। दैनिक भास्कर, अमर उजाला, हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स, नई दुनिया, चौथी दुनिया आदि अखबारों के ई-संस्करण उपलब्ध हो रहे हैं, जिससे देशी तथा विदेशी हिन्दी पाठकों में दिन-ब-दिन वृद्धि हो रही है। डॉ. ऋषभदेव शर्मा का कहना सही है"इंटरनेट और वेबसाइट की सुविधा ने पत्र-पत्रिकाओं के ई-संस्करण तथा पूर्णतः ऑनलाइन पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध कराकर सर्वथा नई दुनिया के दरवाजे खोल दिए हैं।"[4] स्पष्ट है कि आज विश्व के किसी भी कोने का पाठक अन्तर्जाल के जरिए किसी भी हिन्दी अखबार या पत्रिका के पठन का लाभ उठाकर अपनी ज्ञानार्जन की भूख को सहज एवं सुलभ रूप में मिटा सकता है।

## अंतर्जाल पर प्रकाशित हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ :

जन-जन की आपसी दूरियों को कम करने का बेहतरीन कार्य इंटरनेट ने किया है। वर्तमान में विभिन्न भाषाओं की सैंकड़ों पत्रिकाएँ इंटरनेट के माध्यम से प्रकाशित हो रही हैं। कुछ ई पत्र-पत्रिकाओं का स्वरूप दैनिक है तो कुछ साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, वार्षिक एवं अनियमित है। विदेशों में रह रहे अन्तर्जालीय पाठकों के मन में स्वाभाविक रूप से प्रादेशिक एवं स्थानीय अखबार या पत्रिका के प्रति आत्मीयता होती है; वह उसे अपनी पाठकीय आत्मसंतुष्टि को केन्द्र में रखता है। अन्तर्जाल ने पाठकों की आत्मसंतुष्टि को न्याय देने का सराहनीय प्रयास किया है। विदेशों में स्थित भारतीयों ने अपनी मिट्टी के प्रति जुड़ाव को केन्द्र में रखते हुए अपनी ही भाषा में विचार अभिव्यक्त करने के लिए कई पत्र-पत्रिकाओं के रूप में हिन्दी के प्रति अपना दायित्व वहन किया है। "'भारत दर्शन' (http://www. bharatdarshan.co.nz) न्यूजीलैण्ड से प्रकाशित हिन्दी साहित्यिक पत्रिका है। 'सरस्वती' (http://www.saraswatipatra.com) पत्र कनाडा से प्रकाशित होता है। 'अन्यथा' (http://www.anyatha.com) अमेरिका स्थित भारतीय मित्रों द्वारा प्रकाशित

है। 'हिन्दी परिचय' (http://www.hindiparichay.com), 'गर्भनाल' (http://www.garbhanal.com) प्रवासी भारतीयों की ई-पत्रिकाएँ हैं। 'कलायन' (http://kalayan.org), 'कर्मभूमि' (http://www.hindiusa.org) हिन्दी यू.एस.ए. की त्रैमासिक पत्रिका, 'हिन्दी जगत', 'हिन्दी बालजगत' एवं 'विज्ञान प्रकाश' (http://www.medullus.com) विश्व हिन्दी न्यास समिति द्वारा प्रकाशित पत्रिकाएँ हैं; 'ई-विश्वा' (http://www.evishwa.com) अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी समिति, सेलम की त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका; 'प्रवासी टुडे' (http;èèwww.pravasitoday.com) अन्तरराष्ट्रीय साहित्यिक संस्था की पत्रिका है तथा 'पुरवाई' (htpp://www.purwai.com)"[5] आदि पत्रिकाएँ विदेशों से प्रकाशित होकर भी हिन्दी के प्रति अपना दायित्व वहन करने में सफल सिद्ध हुई हैं, इसमें संदेह नहीं है।

भारत से प्रकाशित होनेवाली ई-पत्र-पत्रिकाएँ इस प्रकार है'सृजनगाथा', 'साहित्य कुंज', 'हिन्दी नेस्ट', 'अनुभूति', 'अभिव्यक्ति', 'प्रवक्ता' समाचार वेब पोर्टल, 'भारतीय पक्ष', 'जनोक्ति', 'हिन्दी साहित्य शिल्पी', 'लघुकथा', ' हिन्दी साहित्य मंच', 'अनुरोध', 'ताप्तीलोक', 'हिन्दी चेतना', 'लेखनी', 'साहित्य वैभव', 'मीडिया विमर्श', 'मिलनसागर', 'हिन्दी समय', 'हिन्द युग्म', 'समय दर्पण', 'प्रतिलिपि' द्विभाषी पत्रिका, 'काव्यांचल', 'परिचय', 'प्रेरणा', 'रचनाकार ब्लॉग स्पॉट', 'नई दुनिया', 'चौथी दुनिया', 'दैनिक जागरण', 'दैनिक भास्कर', 'हिन्दुस्तान', 'लोकायत', 'प्रभात खबर', 'देशबन्धु', 'राजस्थान पत्रिका' आदि। इन ई-पत्र-पत्रिकाओं के साथ-साथ 'पाखी', 'तहलका', 'हंस', 'वागर्थ', 'नया ज्ञानोदय', 'चिन्तन-सृजन', 'कथाबिम्ब', 'बहुवचन', 'पुस्तकवार्ता', 'तद्भव', 'उद्गम', 'अक्षरपर्व', 'इंडिया टुडे', 'आउटलुक', 'नवभारत टाइम्स', 'समय के साखी', 'अरगला', 'तरकश', 'प्रज्ञा', 'स्पैन', 'क्षितिज', 'सार-संसार', 'मधुमती', 'अपनी दिल्ली', 'असामान्य विश्व', 'वाङ्मय', 'उर्वशी', 'संस्कृति', 'प्रतिध्वनि', 'प्रज्ञा अभियान', 'पर्यावरण डाइजेस्ट', 'पाण्डुलिपि', 'निरन्तर', 'कलायन', 'काव्यालय' आदि मुद्रित पत्र-पत्रिकाओं के ई-संस्करण भी निकलने लगे हैं। यह बात हिन्दी विश्व की दृष्टि से उल्लेखनीय ही नहीं बल्कि हिन्दी के वैश्विक भविष्य के आशादायी संकेतों का द्योतक सिद्ध होती है। इन पत्र-पत्रिकाओं ने सामयिक विषयों के साथ-साथ विशेष अवसरों को अपने केन्द्र में रखा है। विविध विधागत साहित्य के साथ-साथ बाल दिवस, मातृ दिवस, हिन्दी दिवस, वेलेंटाइन डे, पर्यावरण दिवस, महिला दिवस तथा विशेष अवसरों एवं प्रसंगों को भी अभिव्यक्ति दी है।

## राष्ट्रीय सौहार्द और हिन्दी पत्रिकाएँ :

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने अपना सामाजिक दायित्व बखूबी निभाया है, इसमें दो राय नहीं है। जनसंचार के प्रमुख साधनों एवं माध्यमों के रूप में अपने समसामयिक



परिस्थितियाँ, परिवेश, प्रकृति एवं प्रवृत्तियों को वाणी देने की पुरजोर हिमायत की हुई दिखाई देती है। अनुवाद संस्कृति के बढ़ते महत्त्व के कारण राष्ट्रीय सौहार्द एवं सद्भाव की भावना ने जोर पकड़ा है। जुगल इण्डिया के उत्पाद व्यवस्थापक राहुल रॉय चौधरी का मानना है कि "Google offers searching in 13 languages : Hindi, Tamil, Kanada, Malayalam and Telugu to name a few, Gmail in five languages and google transliteration in Bengali, Gujarati, Hindi, Kannada, Malayalam, Marathi, Nepali, Panjabi, Tamil, Telugu, and Urdu."[6] कहना सही होगा कि गूगल जैसे सर्च इंजन के जरिए अनुवाद का कार्य आसान बना हुआ परिलक्षित होता है। हिन्दी के पाठक अनुवाद के जरिए किसी भी भाषा की सामग्री को गूगल ट्रांसलेशन के जरिए पढ़ सकते हैं। अन्तर्जाल के कारण कई नियमित पत्र-पत्रिकाओं का लाभ पाठक अपने घर बैठे उठा रहे हैं। अन्तर्जाल के कारण आम आदमी के लिए ज्ञानार्जन के क्षेत्र खुले हुए हैं। जनसंचार के कारगर माध्यम के रूप में ई-पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। डॉ. कृष्णकुमार रत्तू का मानना है"आज इंटरनेट के इस जमाने में भाषा का आदान-प्रदान एक साधारण-सी बात है, परन्तु भाषा के साथ अनुवाद का नया प्रयोग इसको एक मुहावरा दे रहा है। जनसंचार के अनेक माध्यमों द्वारा हमें पूरे विश्व के साथ जोड़कर एक नई भाषाई संरचना के नए प्रतिमान स्थापित करता हुआ दिखाई देता है।"[7] स्पष्ट है कि अनुवाद संस्कृति ने राष्ट्रीय सद्भाव को बढ़ावा देने का सराहनीय कार्य किया है और इसी शृंखला में इंटरनेट पर गूगल द्वारा मुहैया की गई ट्रांसलेशन सुविधा मुहावरे के रूप में राष्ट्रीय अस्मिता को वृद्धिगत करती नजर आती है। प्रोज डॉट कॉम, ट्रांसलेटर्स कॅफे डॉट कॉम, लिग्विस्टफाइंडर डॉट कॉम आदि के साथ 'सार-संसार'। यह वह त्रैमासिक पत्रिका है जो विदेशी भाषा के साहित्य को सीधे हिन्दी में अनूदित करके अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सौहार्द की पहल करती है। सुरेश कुमार कहते हैं"हिन्दी के जानकार पश्चिमी देशों में हिन्दी की वेबसाइट जैसेजागरण डॉट कॉम, अमर उजाला डॉट कॉम या वेबदुनिया डॉट कॉम वैसे ही देखते हैं जैसे भारत के लोग भारत में देखते हैं।"[8]

## अन्तर्जाल एवं हिन्दी का भाषिक सन्दर्भ :

वैश्वीकरण की होड़ एवं भूमण्डलीकरण के प्रभाव से हिन्दी भाषा ही नहीं बल्कि अन्य भाषाएँ भी अछूती नहीं रही हैं। विभिन्न वेब पोर्टलों एवं पत्र-पत्रिकाओं में प्रस्तुत भाषा एवं साहित्य पर भी वैश्वीकरण का परिणाम देखा जा सकता है। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री तथा पुस्तकों के आशय एवं विषयों पर भी नई तकनीकी के साथ-साथ वैश्विक परिदृश्य का परिणाम पड़ा हुआ दिखाई देता है। वर्तमान साहित्य के विषय एवं आशय भी नए सिरे से प्रस्तुत हो रहे हैं। अन्तर्जाल पर

प्रकाशित अत्यधिक रचनाओं के विषय भी भूमण्डलीकरण के प्रभाव से ओत-प्रोत हैं। किसी भी भाषा का बहुआयामी विकास उसके सामासिक होने में होता है। अन्तर्जालीय परिदृश्य के अवलोकन के पश्चात् कहना सही होगा कि हिन्दी विभिन्न रूपों में पाठकों के सामने आ रही है। अन्तर्जाल पर प्रस्तुत सामग्री में भी भाषिक अशुद्धियाँ अवश्य दिखाई देती हैं। लेकिन अत्यधिक मात्रा में यह तकनीकी दिक्कतों एवं फांट समस्या का परिणाम कहा जा सकता है। विविध प्रकार की प्रकृतियों को हिन्दी सहज रूप में स्वीकार करती नजर आती है। वर्तमान में यूनिकोड के कारण अन्तर्जाल प्रयोग कर्ताओं को आसानी हुई है। विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ, साहित्य एवं समाचार यूनिकोड का ही प्रयोग कर रहे हैं। अन्तर्जाल पर हिन्दी का वर्तनीगत पक्ष भले ही कमजोर हो, लेकिन आशय, विषय, सम्प्रेषण एवं संचार की दृष्टि से वह समृद्ध परिलक्षित होता है। सरल हिन्दी डॉट कॉम वेबसाइट पर इंटरनेट पर हिन्दी शीर्षक के अन्तर्गत हिन्दी समाचार, हिन्दी विकिपीडिया, इंटरनेट पर हिन्दी के साधन, हिन्दी जाल निर्देशिका तथा यूनिकोड सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है। यह प्रयास हिन्दी को सामान्य जन तक पहुँचाने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

## अन्तर्जाल एवं समकालीन लेखक :

लगभग 10-12 वर्षों की अल्पावधि में हिन्दी ने अन्तर्जाल पर अपनी जगह बना ली है, यह बात हिन्दी विकास की दृष्टि से गौरवपूर्ण प्रतीत होती है। इंटरनेट पर हिन्दी वेबसाइटों एवं वेब पोर्टलों की भीड़ दिखाई देती है। अनगिनत ब्लॉग दिखाई देंगे। बलबीर कुन्दरा का कहना सही है"ब्लॉग के जरिए यंग जनरेशन स्वयं को सम्पूर्ण संसार के साथ जोड़कर अभिव्यक्ति की आजादी का फायदा ले रही है। चैटिंग के दौरान लाइव ऑडियो-विजुअल इंटरेक्शन की जा रही है।...हिन्दी में नए-नए सर्च इंजन, वेबसाइट् और सॉफ्टवेयर तैयार हो रहे हैं। आज इंटरनेट ने विशाल विश्व को एक छोटे से गाँव में तब्दील कर दिया है।"[9] कहना सही होगा कि विश्वविद्यालयों के अध्यापक ही नहीं बल्कि कई शोधार्थी एवं हिन्दी प्रेमी अपने व्यक्तिगत ब्लॉग के जरिए हिन्दी के प्रचार-प्रसार के प्रति अपना दायित्व निभा रहे हैं। यहाँ तक कि कई रचनाकारों के साथ चैटिंग के जरिए सीधा संवाद हो रहा है। वस्तुतः यह बात इसलिए उल्लेखनीय माननी होगी कि किसी रचना के लेखक से मिलना आपाधापी एवं भागम-भाग के युग में सहज कार्य नहीं है। लेकिन इंटरनेट पर यह सहज रूप से सम्भव हो रहा है। उदयप्रकाश हों, जयप्रकाश मानस हों, सुधा ओम ढींगरा हों, शैल अग्रवाल हों, पंकज सुबीर हों, अशोक चक्रधर हों या अन्य कोई भी देशी या विदेशी रचनाकार हों हर किसी के साथ बात करना आसान हुआ है।

अभी के रचनाकारों को केन्द्र में रखने से मालूम होगा कि अन्तर्जाल पर अंग्रेजी साहित्य प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। लेकिन तुलना में हिन्दी के समकालीन लेखक



एवं उनका साहित्य अन्तर्जाल पर कम मात्रा में प्राप्त होता है। हिन्दी की अन्तर्जालीय उपस्थिति एवं अवधि को केन्द्र में रखते हुए कहा जा सकता है कि धीमी गति से ही क्यों न हो, हिन्दी साहित्य अन्तर्जाल पर हावी हो रहा है। प्राचीन कवियों से लेकर आधुनिक रचनाकारों तक की रचनाओं के आस्वादन का लाभ उठाया जा सकता है। कविता कोश डॉट ओ आर जी जैसे वेबसाइट पर सैकड़ों हिन्दी रचनाकार एवं रचनाओं की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। www.cs.colostate.edu, www.associatepublisher.com, www.chillibreeze.com, www.kalpana.it, www.indiavideo.org, www.medialibrary.org आदि वेबसाइटों पर आधुनिक हिन्दी रचनाकार एवं उनकी रचनाओं का परिचय प्राप्त होता है। यहाँ तक कि वीडियो के साथ जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है। समकालीन लेखकों में मन्नू भंडारी, अशोक चक्रधर, ममता कालिया, मालती जोशी, नरेन्द्र मोहन, असगर वजाहत, रूपसिंह चंदेल, पंकज बिष्ट, अर्चना वर्मा, महाश्वेता देवी, मंगलेश डबराल आदि चर्चित रचनाकारों की रचनाओं एवं उनके व्यक्तिगत विषयक पहलुओं से अवगत होना सहज सम्भव है।

ध्यातव्य बात यह कि हिन्दी में वेब राइटर के रूप में लेखकों की उपस्थिति अत्यल्प दृष्टिगोचर होती है। व्यवसायिक प्रवृत्ति के कारण लेखकों का नजरिया बदलना सहज सम्भव नहीं है। हिन्दी के विकास एवं प्रचार-प्रसार को केन्द्र में रखते हुए शासन स्तर तथा व्यवसायिक पोर्टलों द्वारा लेखकों को ई-पुस्तकों के मानदेय के रूप में उचित राशि के प्रावधानोपरांत कुछ मात्रा में इस समस्या का समाधान हो सकता है।

## अन्तर्जालीय हिन्दी का व्यवसायिक पक्ष :

वस्तुतः किसी भी राष्ट्र का बहुआयामी विकास तब सम्भव है जब वह राष्ट्र अन्य राष्ट्रों के साथ अपने आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करता है। विदेशों में लाखों की संख्या में प्रवासी भारतीय निवास करते हैं। भले ही आज विदेश से हो या स्वदेश से हो, हिन्दी वेबसाइटों से अर्थार्जन नहीं के बराबर है। वर्तमान में विज्ञापनों का रुख मुद्रित संचार माध्यमों के प्रति अत्यधिक दिखाई देता है। विज्ञापन प्रस्तोताओं की धारणा है कि विज्ञापनों को देखनेवाले पाठकों की वृत्ति स्थानीय, राष्ट्रीय अखबार एवं पत्र-पत्रिकाओं के प्रति पर्याप्त मात्रा में दिखाई देती है। कुछ मात्रा में यह बात सही है। लेकिन भविष्य में कई राष्ट्रीय एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को वेबसाइटों के विज्ञापनों को अपनाना होगा।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने समझ लिया है कि भारतवर्ष में व्यापार नीति को गतिशील बनाने के लिए हिन्दी भाषा एवं वेबसाइटों को ही उत्पाद के विज्ञापनों के प्रचारार्थ आवश्यकता तथा मजबूरन भी क्यों न हो चुनना समय एवं दुनिया की माँग

होगी। आज अन्तर्जाल पर हम देखते हैं कि कई वेबसाइटों में अद्यतनता का अभाव परिलक्षित होता है। इसका मूल कारण वेब पत्र-पत्रिकाओं के संचालनार्थ अर्थाभाव से पर्याप्त मात्रा में जूझना पड़ रहा है। विशाल डाकोलिया का कहना है"समूचा भारत राष्ट्र, भारतवासी, भारतीय क्षेत्रीय भाषाएँ एवं इंटरनेट संयुक्त रूप से भावी वैश्विक अर्थव्यवस्था में महती भूमिका अदा करेंगे। यह सामंजस्य एवं ताना-बाना भविष्य की स्वर्ण खदानों के रूप में आकार ले रहा है।"[10] कहना गलत न होगा कि अन्तर्जालीय हिन्दी पूरे विश्व को प्रभावित करेगी जिससे वैश्विक अर्थव्यवस्था मजबूत होगी। आज का परिदृश्य मजबूत अर्थव्यवस्था की नींव के रूप में उभरकर आ रहा है, जो भविष्य में 'वैश्विक अर्थसमृद्ध भवन' में परिणत होगा इसमें सन्देह नहीं है।

## विदेशों में अवस्थित हिन्दी संस्थाओं का अवदान :

भारतवर्ष में हिन्दी को राजभाषा के रूप में मान्यता तो मिली है लेकिन वह राष्ट्रभाषा नहीं बन पाई यह चिन्ता की अपेक्षा चिन्तन का विषय है। स्मरणीय बात यह कि वह भारत में जनवाणी के रूप में अपना दायित्व सक्षमता के साथ वहन कर रही है। यही जनवाणी वैश्विक वाणी बनने की उम्मीदों के साथ विश्वपटल पर अपना अस्तित्व सिद्ध कर चुकी है। "Outside of India Hindi speakers are 1,00,000 in USA; 685,170 in Mauritius; 890,292 in South Africa; 232,760 in Yemen; 147,00 in Uganda; 5000 in Singapore; 8 Million in Nepal; 20,000 in Newzeland"[11] इससे मालूम होता है कि हिन्दी का वैश्विक परिप्रेक्ष्य व्यापक एवं विस्तृत है। न्यूजीलैण्ड में प्रवासी भारतीयों की संख्या पर्याप्त है। स्वाभाविक रूप से फिजी निवासी तथा न्यूजीलैण्डवासियों में हिन्दी भाषा एवं भारतवर्ष की संस्कृति के प्रति जुड़ाव परिलक्षित होता है। 'भारत-दर्शन' के सम्पादक रोहित कुमार 'हैप्पी' का कहना है कि "भारत-दर्शन इंटरनेट पर विश्व की पहली हिन्दी साहित्यिक पत्रिका थी। भारत-दर्शन ने भारत सहित विश्व के अनेक हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का वेब प्रकाशन के लिए मार्गदर्शन का काम किया है।"[12] भारत-दर्शन डॉट कॉम ने हिन्दी में विदेशी परिप्रेक्ष्य को व्यापक पटल पर अभिव्यक्ति देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में न्यूजीलैण्ड से पत्र-पत्रिकाओं के दायित्व के साथ-साथ रेडियो और टीवी ने भी काफी योगदान दिया है। साथ ही ऑकलैण्ड विश्वविद्यालय में भी आरम्भिक एवं मध्यम स्तर की हिन्दी शिक्षा दी जा रही है।

त्रिनिदाद में भी अत्यधिक जनसंख्या भारतीय मूल की है, जो अपनी माटी के प्रति अंतस से जुड़ी हुई है। त्रिनिदाद एवं टोबेगो विश्वविद्यालय के साथ-साथ वेस्टइंडीज विश्वविद्यालय में भी हिन्दी अध्ययन एवं अध्यापन कार्य हो रहा है। "वेस्टइंडीज विश्वविद्यालय में 18 से अधिक अनुमोदित हिन्दी पाठ्यक्रम चलाए जा



रहे हैं।"[13] कहना सही होगा कि हिन्दी ने त्रिनिदाद एवं वेस्टइंडीज में अपनी जड़ें मजबूत की हुई हैं। यहाँ वर्ष 2008 में हिन्दी पंचायत, 2003 में अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन एवं 1996 में विश्व हिन्दी सम्मेलन हुए। स्पष्ट है कि हिन्दी यहीं की जन के लिए अपनी है।

मॉरिशस वह भूमि है जहाँ हिन्दी प्रेमियों ने हिन्दी के प्रति अपना सृजनात्मक दायित्व भी वहन किया है। लगभग स्वतन्त्रा पूर्वकाल से यहाँ हिन्दी साहित्य का सृजन हो रहा है। अभिमन्यु अनत, मणिलाल डॉक्टर, विष्णुदयाल, लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी, ब्रजेन्द्रकुमार, शिवसागर रामगुलाम, हरिप्रसाद रिसाल, सोमदत्त बखोरी, हरिनारायण सीता, पूजानन्द नेमा, हेमराज सुन्दर, मुकेश जीबोध तथा विश्व हिन्दी सचिवालय के महासचिव डॉ. राजेन्द्र मिश्र आदि महानुभावों ने अपनी मौलिक रचनाओं के जरिए हिन्दी के वैश्विक परिदृश्य को समृद्ध बनाने में अहम भूमिका निभाई है। सुनील विक्रम सिंह का मानना है"भारत के बाहर कई देशों में हिन्दी साहित्य का सृजन हो रहा है, परन्तु सर्जनात्मक साहित्य की जो प्राणवत्ता और जीवन्तता मॉरिशस के हिन्दी साहित्य में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।"[14] स्पष्टतः मॉरिशस ने अपने अनुभव जगत् को हिन्दी के जरिए वाणी देने का महत्तम कार्य किया है जो भारतवासियों के लिए ही नहीं अपितु विदेशियों के लिए प्रेरणादायी सिद्ध होता है। वस्तुतः अनुभव जगत् ही अंतस से जुड़ने की शक्ति प्रदान करता है। मॉरिशस में महात्मा गाँधी संस्थान ने भी हिन्दी के प्रति अपना नजरिया प्रस्तुत किया है। ध्यातव्य बात यह कि हिन्दी सचिवालय भी हिन्दी को वैश्विक स्तर पर मंच दिलाने में अग्रणी रहा है।

विश्व हिन्दी न्यास (वर्ल्ड हिन्दी फाउंडेशन) यू.एस.ए. में स्थित हिन्दी की प्रतिबद्ध संस्था है जो जनवरी, 2000 में अस्तित्व में आई। विश्व हिन्दी न्यास के पूर्व कार्यकारी संचालक राम चौधरी ने संस्था के लक्ष्य को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है "To create a global awareness of Hindi Language. To promote its use in all branches of knowledge, To disseminate the values enshrined in the culture of India."[15]

भारतीय संस्कृति के मूल्यों एवं आदर्शों की हिमायत एवं विभिन्न स्तरों पर ज्ञानार्जन के अवसरों को केन्द्र में रखते हुए यह संस्था सक्रिय है। न्यास समाचार, बाल हिन्दी जगत, हिन्दी जगत, विज्ञान प्रकाश आदि पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ ही कई कॉलेजों एवं स्कूलों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन को भी इसने केन्द्र में रखा है।

डब्ल्यू.एच.एफ के विभागीय संचालक काम गुप्ता का कहना है कि "50% interst in the mainstream USA amongst non-Indians can be easily noticed at Hindi classes in various universities... WHO achieves its abjectives through many of its chapters internationally, currently it has active

chapters in Chicago, California, New York, New Jersy"[16] अतः कहा जा सकता है कि पाश्चिमी देशों में हिन्दी ज्ञानार्जन के महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में एवं व्यवसाय के कारण वृद्धिगत होती दिखाई देती है।

हिन्दी प्रचारिणी सभा कनाडा से सुधा ओम ढींगरा के संपादकत्व में सम्पादित त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दी-चेतना' अन्तर्जाल पर देश तथा विदेशी रचनाकारों को मंच प्रदान कर रही है। 18 अक्टूबर, 1980 में वर्जीनिया में स्थापित अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी समिति विविध गतिविधियों के साथ युवाओं में हिन्दी का दीपक जलाने के उद्देश्य से 'ज्ञानदीप' पुरस्कार देकर उन्हें प्रेरित एवं प्रोत्साहित करती है। महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा द्वारा हिन्दी प्रचार-प्रसार के विभिन्न स्तरों पर योगदान हुआ है जो हिन्दी के इतिहास तथा विकास में अपना स्थान बना चुका है।

वन इण्डिया डॉट कॉम हिन्दी, वीर अर्जुन डॉट कॉम, 24 दुनिया डॉट कॉम प्रोभारत डॉट कॉम तथा मीटअप डॉट कॉम आदि वेब पत्र-पत्रिकाओं ने हिन्दी समाचारों को देश-विदेश में पहुँचाया है। साथ ही कई हिन्दी फिल्में रसियन में तथा कई अंग्रेजी फिल्में हिन्दी में डबिंग हुई हैं। अंततः यह कहना समीचीन होगा कि हिन्दी को वैश्विक अन्तर्जालीय परिप्रेक्ष्य में काफी सफलता मिली है और भविष्य में अत्यधिक उन्नतावस्था पाने की उम्मीदें भी हैं।

## हिन्दी का अन्तर्जालीय परिदृश्य एवं संभावनाएँ :

हिन्दी के अन्तर्जालीय परिदृश्य को समृद्ध बनाने में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका उल्लेखनीय रही है। पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में ही किताब का व्यापक प्रचार एवं प्रसार हुआ। परिणाम यह हुआ कि किताबों के व्यापक प्रसार से ज्ञान की एकाधिकारशाही का अन्त हुआ। यही भूमिका वर्तमान में अंतरजाल निभा रहा है। इंटरनेट के जरिए ज्ञानार्जन प्राप्ति सहज एवं सुलभ हुई है। प्रश्न यह उठता है इतना सारा होने के बावजूद वेब पते अंग्रेजी में ही हैं। लेकिन वह दिन भी दूर नहीं है, नेट सर्फिंग, वेब पते देवनागरी में लिखे जाएँगे। "इंटरनेट कॉर्पोरेशन फॉर एसाइंड नेम्स एण्ड नम्बर्स (आईसीएएनएन) ने सात भारतीय भाषाओं, हिन्दी, तमिल, उर्दू, बंगला, गुजराती, पंजाबी, और तेलुगू में 'वेब पते' की अनुमति देने का फैसला किया है।"[17] कहना गलत न होगा कि डोमेन नामों को मैनेज करनेवाली अन्तरराष्ट्रीय संस्था द्वारा हिन्दी भाषा को चुनना निश्चित ही इसके उज्ज्वल भविष्य के संकेत हैं। हिन्दी को राष्ट्रभाषा एवं विश्वभाषा के रूप में प्रतिस्थापित करने के लिए हिन्दी अध्येताओं एवं उनकी मानसिकता में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस होती है। जहाँ एक ओर हिन्दी पाठकों में हिन्दी के प्रति असीम आस्था है वहीं इंटरनेट में साक्षर न होने के कारण वे न अपनी ज्ञान की शाखाओं को परोस सकते हैं न दूसरों द्वारा परोसे गए ज्ञान का लाभ उठा सकते हैं। संचार माध्यमों, खासकर इंटरनेट प्रयोग में साक्षर होने पर हिन्दी



विश्वमंच पर व्यापक दायरे में अपनी जड़ें जमा लेगी इसमें सन्देह नहीं। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में योगदान देनेवाली संस्थाओं को चाहिए कि वे संस्थान द्वारा मुद्रित रूप में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं को ई-पत्रिका के रूप में प्रकाशित कर हिन्दी के प्रति अपनी आत्मीयता को वाणी दें। दूसरी दुर्भाग्यपूर्ण बात यह कि सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित कुछ पत्रिकाएँ ही वेब पत्रिका के रूप में प्रकाशित नहीं हो रही हैं। वस्तुतः इस मन्त्रालय के प्रकाशन विभाग को चाहिए कि 'आजकल', 'कुरुक्षेत्र', 'योजना' तथा अन्य मुद्रित पत्रिकाओं को वेब पत्रिका के रूप में प्रकाशित कर अपना सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्व निभाएँ। अंततोगत्वा कहना चाहूँगा कि जितनी अन्तर्जालीय परिदृश्य की व्याप्ति है उतनी ही इस विषय की भी है। लेकिन मैंने प्रस्तुत आलेख में अन्तर्जालीय परिदृश्य को हिन्दी के परिप्रेक्ष्य में वाणी देने की कोशिश की है।

## निष्कर्ष :

विभिन्न दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक तथा अनियतकालिक हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की अन्तर्जाल पर उपस्थिति हिन्दी की सामासिक प्रकृति एवं प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति दे रही हैं। आरम्भ में अन्तर्जाल की उपयोगिता को दैनिक जागरण, आउटलुक, इण्डिया टुडे, टाइम्स ऑफ इण्डिया, हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दुनिया आदि पत्र-पत्रिकाओं ने ही समझा। साथ ही अन्तर्जाल पर प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं ने अनेक नई विधाओं को भी जन्म दिया है। भले ही उन विधाओं को विधा के रूप में मान्यता न मिली हो। 'भारत दर्शन', 'सरस्वती', 'अन्यथा', 'हिन्दी परिचय', 'गर्भनाल', 'कलायन', 'कर्मभूमि', 'हिन्दी जगत', 'हिन्दी बालजगत' एवं 'विज्ञान प्रकाश', 'ई-विश्वा', 'प्रवासी टुडे' तथा 'पुरवाई' आदि पत्र-पत्रिकाएँ विदेशों से प्रकाशित हो रही हैं। राष्ट्रीय सौहार्द एवं साम्प्रदायिक सद्भाव को बढ़ावा देने का कार्य कई देशी तथा विदेशी पत्रिकाओं ने किया है। गूगल द्वारा अनुवाद संस्कृति को संजीवनी मिली है, जिससे राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति आम आदमी में आस्था बनी है। अन्तर्जाल पर प्रस्तुत हिन्दी भाषा एवं साहित्य स्तरहीन एवं सदोष अवश्य पाया जाता है, जिसके प्रति थोड़ी-सी सावधानी एवं सतर्कता बरतने की आवश्यकता है। लेकिन इससे हिन्दी की प्रकृति पर किसी भी प्रकार की आँच नहीं आ सकती। बल्कि हिन्दी की सामासिक प्रकृति को बढ़ावा मिलने की पर्याप्त उम्मीदें हैं।

अन्तर्जाल पर अंग्रेजी साहित्य एवं साहित्यकारों की तुलना में हिन्दी साहित्य एवं साहित्यकारों की उपस्थिति कम दृष्टिगोचर होती है। वस्तुतः व्यवसायिक दृष्टिकोण को किनारे कर हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं उज्ज्वल भविष्य को केन्द्र में रखते हुए हिन्दी साहित्यकारों को अन्तर्जाल पर वेबराइटर के रूप में उपस्थित होना समय एवं समाज की आवश्यकता प्रतीत होती है। अंततः कहा जा सकता है कि हिन्दी का

अन्तर्जालीय परिदृश्य पर्याप्त मात्रा में समृद्ध अवश्य है लेकिन उसमें असीम संभावनाएँ भी दिखाई देती हैं। हिन्दी रचनाकार, पाठक एवं अध्येताओं का अन्तर्जालीय ज्ञान में साक्षर होना आवश्यक है। हिन्दी पाठकों एवं रचनाकारों को चाहिए कि वे इक्कीसवीं सदी के ज्ञानार्जन स्रोत एवं चुनौतियों को केन्द्र में रखकर अपना मार्ग तय करें, जिससे हिन्दी भाषा का ही नहीं बल्कि भारतवर्ष का भविष्य आशादायी एवं उज्ज्वल होगा। आज जिस गति से वेबसाइटों तथा ब्लॉगों की संख्या बढ़ रही है, उसी अनुपात में हिन्दी इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या भी बढ़ रही है।

## सन्दर्भ संकेत :


1. डॉ. दिनेश प्रसाद सिंहप्रयोजनमूलक हिन्दी और पत्रकारिता, पृष्ठ214
2. सुरेश कुमारइंटरनेट पत्रकारिता, पृष्ठ3
3. सं. रवीन्द्र कालियानया ज्ञानोदय, पृष्ठ77
4. www.abhivykati.com, 1 may, 2007
5. http://www.hindi.wikipedia.org
6. Span, Sept-Oct, 2009, page-50
7. डॉ. कृष्णकुमार रत्तूविश्व मीडिया बाजार, पृष्ठ97
8. सुरेश कुमारइंटरनेट पत्रकारिता, पृष्ठ3
9. डॉ. बलवीर कुन्दराजनसंचार बदलते परिप्रेक्ष्य मेंभूमिका से उद्धृत
10. प्रो. हरिमोहनसूचना क्रान्ति और विश्वभाषा हिन्दी, पृष्ठ67
11. http://www.cs.colostate.edu, 12/2/2011
12. http://www.bharatdarshan.com,12/2/2011
13. http://www.heipos.net, 12/2/2011
14. http://www.abhivyakti-hindi.org, 2003
15. http://www.kvblalibrary.wordpress.com, 8/6/2010
16. http://www.timesofindia.indiatimes.com, 28/8/2010
17. www.dw-world.de, Deutsche Welle, 2/09/2010




# हिन्दी में लोकप्रियता का प्रतीक चातक

**पराक्रम सिंह***

भारत की संस्कृति और सभ्यता ही उसकी आत्मा है। यहाँ की अधिकतर जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। इनका सारा जीवन प्रकृति पर ही निर्भर रहता है, जो इन्हें भोजन-पानी, रहन-सहन, व्रत-पर्व-त्योहार, सभ्यता को पूरा कराने में सहायक सिद्ध होती है। भारत की प्राकृतिक सुषमा बड़ी ही चितेरी रही है। नाना प्रकार की वनस्पति, पुष्प, पेड़-पौधे, फसल, पशु-पक्षी विशेष ऋतु समय पर आकर इसकी शोभा को और ही बढ़ा देते हैं। शरद ऋतु और वर्षा के समय एक विशेष तरह का पक्षी अपनी मधुर आवाज के साथ बोलता हुआ दिखाई देता है जिसे हम चातक (पपीहा) के नाम से जानते हैं। इसके सम्बन्ध में मान्यता है कि यह वर्षा ऋतु के स्वाति नक्षत्र का पानी ग्रहण करता है। यह पूरे वर्ष पानी नहीं पीता। इस जल को ग्रहण करके अण्डा और बच्चा देने का कार्य इनमें शुरू हो जाता है। पपीहा, चातक और चकवा-चकवी नाम का यह पक्षी दिन भर एक जोड़े के रूप में साथ रहते हैं किन्तु शाम को ये दोनों बिछड़कर ही रात बिताते हैं। सुबह इनका मिलन होता है। स्वाति नक्षत्र का पानी जहाँ इस पक्षी के लिए जीवन उपयोगी सिद्ध होता है वहीं यह भारत के अधिकांश राज्यों में किसानों के लिए वरदान सिद्ध होता है।

इस देश में सभी प्राणियों के प्रति अपनत्व का भाव रहा है। फिर भी कुछ जीव-जन्तु, फल-फूल, पेड़-पौधों के प्रति लोगों का ध्यान अधिक रहा है। तोता, मैना, भौंरा, कबूतर, कमल, कोयल, कौआ, खंजन, गुलाब, चातक आदि को कवियों ने अपनी लेखनी के माध्यम से इनका कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में वर्णन किया है। इस सन्दर्भ में चातक (पपीहा) नामक पक्षी का वर्णन कवियों ने बड़े ही मनोहर ढंग से किया है।

* पराक्रम सिंह द्वारा प्रो. शैलैन्द्र कुमार शर्मा, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)-456010

भक्ति युग के निर्गुणधारा के कवि बीजक जैसे ग्रन्थ की रचना करने वाले कबीरदास जी ने इसका वर्णन करते हुए कहा है कि

*चातक सुतहि पढ़ावहि, आन नीर मत लेइ।*
*मम कुल यही सुभाष है, स्वाति बूँद चित देइ ॥*

इस दोहे के माध्यम से कबीरदास जी जहाँ चातक के वंशानुगत गुण का वर्णन करते हैं वहीं दूसरी तरफ मनुष्य को अपने सद्मार्ग पर चलने का संकेत देते हैं।

प्रेम के पीर सूफीधारा के कवि मलिक मुहम्मद जायसी जी ने नागमती वियोग वर्णन में चातक का वर्णन करते हुए कहा है

*लागि कुवांर नीर जग घटा। अवहुं आउ कंत तन लटा ॥*
*तोहि देखि पियु पलु है कया। उतरा चीतु बहुरि करु मया ॥*
*चित्रा मित्र मीन आवा। पपिहा पीउ पुकारत पावा ॥*
*उवा अगस्त, हस्ति घन गाजा। तुरयपलानि चढ़े रनराजा ॥*
*स्वाति बूँद चातक मुख परे। समुद्र सीप मोती सब भरै ॥*
*सरवर-सँवरि हंस चलि आए। सारस कुरलहि खंजन देखाए ॥*
*भा परगास कांस बन फूलै। कंत न फिरे, विदेसहि भूले ॥*

उपर्युक्त पंक्ति के माध्यम से प्रकृति के सुन्दर दृश्य का वर्णन करते हुए सभी जीवधारियों के लिए अनुकूल मौसम के साथ प्रियतम की याद में प्रिया का विरह प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने चातक की तरह भक्ति एवं राम के प्रति विश्वास की बात कही है

*एक भरोसे एक बल, एक आस बिस्वास।*
*एक राम-घनश्याम हित चातक तुलसीदास ॥*

तुलसीदास जी ने चातक के मानस की सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहा है

*मुख-मीठे मानस मलिन कोकिल मोर चकोर।*
*सुजस-धवल, चातक नवल! रह्यो भुवन भरि तोर ॥*

सूरदास जी ने भी भ्रमर गीत में चातक (पपीहा) के बिरह से भगवान से अपने बिछुड़ने की तुलना किया है।

*बहुत दिन जियो पपीहा प्यारो।*
*बासर रैन नांव लै बोलत भये विरह-जुटकारी।*
*आप दुखित पर दुखित जानि जिय, चातक नाव तियारो।*
*देखौ सफल विचारी सषि जिय, बिछुरनि को दुख न्यारो ॥*



इसी प्रकार से मीराबाई ने पपीहा के विरह का उल्लेख किया हैं

*रहु-रहु पापी पपीहा रै, पिव को नाम न लेय।*
*जे कोई बिरहनि साम्हल तो पिबकारन जिब देय ॥*

रहीम ने भी चातक के जीवन को इस प्रकार याद किया है

*मुक्ता करै करपूर कर, चातक जीवन जोय।*
*एतो बड़ी रहीम जल, व्याल-बदन विष होय ॥*

रीतिकाल के कवि बिहारी भी चातक को भूले नहीं हैं

*लगत सुभग सीतल किरन, निसि सुख दिन अब गाहि।*
*माह ससी-भ्रम-सूर-ज्यौं, रहित चकोरो चाहि ॥*

रीतिकाल के कवि प्रेम के परि नाम से जाने जाने वाले घनानंद जी ने चातक के प्रेमयुगल की अद्वैतता को प्रदर्शित करते हुए कहा है

*चाहै प्रान चातक सुजान घनआनंद को।*
*हैया कहूं काहू को परै न काम कूर सौं ॥*

आधुनिक काल के कवि प्रताप नारायण मिश्र ने पपीहा के वियोग अवस्था का वर्णन करते हुए कहा है

*वरषा है प्रतापूजू, घटिधरौ-अबलां मन को समझायो जहाँ।*
*यहि व्यारी तवै बदलेगी कहू, पपीहा जब पूछि है। (पीव कहाँ)?*

इसी तरह से राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने यशोधरा की विरह अवस्था में चातक का स्मरण करते हुए कहा है

*बलि-जाऊँ बलि-जाऊँ चातकी, बलि-जाऊँ इस रट की।*
*मेरे रोम-रोम में आकर, यह काँटे-सी खटकी ॥*

छायावाद युग के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद ने अपने 'नीरद' शीर्षक रचना में चातक के करुण विलाप का वर्णन करते हुए कहा है

*चपला की व्याकुलता लेकर चातक का करुण विलाप,*
*तारा-आँसू पोंछ गगन के, रोते हो किस दुख से आप?*

प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानन्दन पंत ने भी पपीहा की पुकार का उल्लेख किया है

*पपीही की वह पनि पुकार निर्झरों की भारी झर-झर,*
*झींगरों की झीनी झनकार घनों की गुरु गंभीर घहर?*

इसी प्रकार में भी पंत जी ने 'बादल' कविता इस पक्षी को याद किया है

*मेघदूत की सजल कल्पना/ चातक के चिर जीवन धार,*
*मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर /सुभग स्वाति के मुक्ताकार,*
*विहग वर्ग के गर्भ विधायक/ कृषक बालिका के जलधार?*

फिर जनवादी कवि नागार्जुन ने 'बादल को घिरते देखा है' शीर्षक के माध्यम से चकवा-चकवी के विरह वर्णन प्रस्तुत करते हुए कहा है

*अलग-अलग रहकर ही जिनको,*
*सारी रात बितानी होती,*
*निशाकाल के चिर अभिशापित,*
*उन चकवा-चकई का,*
*बन्द हुआ क्रंदन, फिर उनमें।*

इसी तरह मोहन सोनी ने चातक का वर्णन करते हुए कहा है

*चातक स्वाति बूँद को प्यासो, मनदरसन को प्यासो।*
*म्हारो आँगन तरस्यो-तरस्यो, दुनिया में चोमासो ॥*

इन पंक्तियों में चातक के माध्यम से कवि अपने अन्दर की दर्शनरूपी लालसा की बात कर रहा है। इसी तरह हिन्दी भाषा के साथ-साथ लोकभाषा के कवियों ने भी चातक को लेकर अनेक रचनाएँ की हैं। स्पष्टतः चातक पक्षी को हिन्दी के कवियों ने बड़े ही सहज ढंग से हर्ष-विरह दोनों ही स्थिति में इसका वर्णन कर लोकप्रिय बनाया है।





# अपने साथ*

**नीरजा रश्मि****

ज्योत्स्ना मिलना का उपन्यास 'अपने साथ' उन सूक्ष्म मनोभावों को आधार बनाकर लिखा गया है, जो आम समझ और दृष्टि से परे हैं। यह परिवार और समाज में महिलाओं की स्टीरियो टाइप छवि और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की पूर्व-निर्धारित मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में एक औरत के मन की उलझन और उसके अपने साथ निरन्तर चलने वाले द्वन्द्व की कहानी है। एक छोटे शहर की पारिवारिक पृष्ठभूमि में लिखी गई इस कथा में तीन मुख्य पात्र हैं, केका, रोति और उनका बच्चा बुलू। पति-पत्नी सम्बन्धों की दृष्टि से उनका आपसी सम्बन्ध सहज है, जो एक आदर्श पति-पत्नी हैं। वे एक आदर्श पारिवारिक छवि प्रस्तुत करते हैं। यदि कुछ असामान्य है तो वह है केका की व्यथा, उसकी अपने-आपसे चलने वाली जद्दोजहद।

समाज, परिवार, पति तथा बच्चे की नजर में केका एक कर्तव्य परायण स्त्री है, जो पति तथा बच्चे की अच्छी देखभाल कर लेती है। फिर भी मन के कोने में यह कुंठा जड़ जमा चुकी हैं कि वह उन असंख्य पत्नियों और माओं की तरह नहीं बन पाई, जिन्होंने मातृत्व एवं पत्नीत्व से पूर्णसामंजस्य स्थापित कर लिया है। उसका रोज का जीवन पति और बच्चे की धुरी पर ही चक्कर काटता है, परन्तु निरन्तर साथ रहते हुए भी वह उनके साथ जुड़ाव महसूस नहीं कर पाती। बल्कि कभी-कभी यह साथ उबाऊ भी हो जाता है। पति के साथ अंतरंग पलो के लिए मन में इच्छा जगती तो है, परन्तु उन पलों में शरीर में उग आए काँटों का क्या करे वह! उसके शरीर और मन के विद्रोह से आहत रोहित के प्रति उसे सहानुभूति है। उसे लगता है कि रोहित

* अपने साथ, ज्योत्स्ना मिलन; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, न. दिल्ली, पृ. 127, मूल्य 160 रुपए

** डॉ. नीरजा रश्मि, एसोसिएट प्रोफेसर, समाज विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद, श्री अरविन्दो मार्ग, नई दिल्ली110016

के मन में पत्नी की एक कल्पना है, जिसमें वह फिट नहीं बैठती। पर रोहित कभी शिकायत क्यों नहीं करता, शायद उसने समझौता कर लिया हो। केका को ऐसा लगता है कि वह केवल अपने को ही चाहती है और रोहित और बुलू के प्रति उसकी चाहत में भी शायद उसका अपना ही स्वार्थ निहित है। उसे लगता है कि वह उनके साथ छल कर रही है क्योंकि प्रेम, दया, लगाव आदि हथियारों से दूसरों को ही धोखा दिया जा सकता है, स्वयं को नहीं। समाज में अधिकांश औरतें भी शायद इसी भ्रम का शिकार हैं।

केका का व्यक्तित्व परिपक्व तो नहीं, किन्तु अत्यन्त संवेदनशील है। वह बगावत तो नहीं करती, परन्तु अपनी सोच और स्वाभिमान से समझौता भी नहीं कर पाती। चाहकर भी वह अन्य महिलाओं की तरह नहीं बन पाती। महिलाओं की अभिनय क्षमता पर उसे उनसे ईर्ष्या होती है। न जाने वे कैसे इतनी दक्षता से अभिनय कर लेती हैं कभी शोक का, कभी आश्चर्य का तो कभी खुशी का। उसे खीज होती है अपने एक मात्र पैबन्द लगे चेहरे पर, जिससे असलियत झाँकती रहती है। उसे ऐसा लगता है कि भावनाओं को केवल गहराई से महसूस किया जा सकता है, व्यक्त नहीं बातें। सिर्फ उतनी ही नहीं होतीं, जितनी कही जाती हैं या देखी जाती हैं। बातों के आगे-पीछे भी कितना कुछ होता है, पर सुनने वाला तो केवल कहे हुए को ही सुन सकता है। अतः हर्ष, विषाद, निराशा, दुःख, शोक आदि भावनाओं को शिद्दत से महसूस करती हुई भी केका मुखर होने में अपने आप को असमर्थ पाती है। उसे भावनाओं की गम्भीरता के आगे शब्दों के बौनेपन का एहसास होता है और अर्थ के बदल जाने का भय भी। संवेदनाओं/भावनाओं को प्रकट करने के सारे कीमती मौके केका इसी उधेड़बुन में गँवा देती है।

बचपन चाहे अभावग्रस्त भी क्यों न रहा हो, उसे याद करना सदा सुखद होता है। इसी प्रकार केका का बचपन सुखद या आरामदायक तो नहीं था, फिर भी वह बार-बार बचपन के दिनों में लौटती है। सचमुच उसका यह सोचना गलत नहीं कि बचपन के अभाव का रंग कितना गहरा और पक्का होता है, उनका अपना ही सुख है। मनुष्य को उन अभावों से लगव-सा रहता है। तभी तो बच्चे के साथ वह बार-बार अपने बचपन के दिनों में पहुँच जाती है।

इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें एक स्त्री द्वारा पुरुष-दृष्टिकोण का अनुमान लगाया जाता है। एक स्त्री पुरुष की दृष्टि में एक आदर्श पत्नी की परिकल्पना करती है और सोचने का प्रयास करती है कि पुरुष/पति किसी आदर्श पत्नी में कौन-सी विशेषताएँ चाहता होगा। वह उन परिकल्पित अपेक्षाओं को पूरी न कर पाने की कुंठा में जीती है। संभवतः ऐसा स्त्रियों की सामाजिकता की प्रक्रिया और बचपन से देखी-सुनी मान्यताओं/धारणाओं में आस्था का परिणाम हो। रोहित का



चरित्र आम पुरुष-छवि से भिन्न है, वह एक सज्जन और सहृदय पति है। उपन्यास में प्रयुक्त उपमाएँ बड़ी सटीक हैं। सुबह के समय 'कल्पवृक्ष जैसे दिन का उगना जिससे जो चाहे पा लिया जाय' या शाम को टूट-फूट के 'मलबे जैसा ढह गया दिन'प्रातःकाल की आशा तथा शाम की निराशा के सहज द्योतक हैं। कुछ प्रसंग जैसे घटनाओं/दुर्घटनाओं के कारण अचानक आई गतिशीलता को देखकर केका के मन में उठने वाला भाव कि जीवन की एकरसता को झकझोरने के लिए शायद ये घटित होती हैं, मनोरंजन है। बच्चों को बोधने के लिए सुनाए जाने वाले आंचलिक बाल-गीतों का समावेश उपन्यास में नयापन तो जोड़ता ही है, पाठकों के लिए रुचिकर भी होता है। पाठकों का बार-बार इन्हें पढ़ते हुए अपने बचपन में लौटकर अपने सीखे गीतों को याद करना स्वाभाविक है।

उपन्यास की गति धीमी है और कल्पनाओं की अतिशयता केका के जीवन की निष्क्रियता का बोध करती हैं। सुबह से रात तक की घटनाओं का विस्तृत विवरण कभी-कभी बोझिल और उबाऊ बन जाता है। लोगों की वृत्ति एवं प्रकृति का सूक्ष्म वर्णन रुचिकर है। उम्र के साथ निकटतम सम्बन्धों की प्रकृति में भी बदलाव का उललेख मार्मिक है। संक्षेप में, इस उपन्यास में एक संवेदनशील स्त्री के अपने स्वाभिमान से समझौता न कर पाने की कथा-व्यथा है।

# हरसिंगार खिलता है : एक विशिष्ट काव्य-कृति*

**वरुण कुमार तिवारी****

'हरसिंगार खिलता है, शीर्षक काव्य-कृति ख्यात साहित्यकार, आलोचक एवं कवि डॉ. भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता द्वारा प्रणीत सूक्ष्म अनुभूतियों की संकल्पनात्मक, कलापूर्ण एवं उत्कृष्ट रचनाओं का संग्रह है। सद्वृत्ति, राष्ट्रभक्ति एवं मानवीय मूल्यों से समृद्ध तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शिष्य डॉ. गुरुमैता पूर्व मध्यकालीन सांस्कृतिक भारत के विशिष्ट अध्येता हैं। प्रस्तुत काव्य-कृति में मनोगत शीर्षक से अपनी बात कहते हुए उन्होंने लिखा है'हरसिंगार खिलता है' मेरी विशिष्ट कविताओं का संकलन है। इसके माध्यम से मैंने अपनी सुदीर्घ जीवन-धारा के विभिन्न स्थलों पर लेखनी को स्नात कर समसामयिक कविता के कतिपय सन्दर्भ-पक्षों को रेखांकित करने का सहज प्रयास किया है।'

समीक्ष्य संग्रह में कवि ने गीत और मुक्तकों को अपनी कविता का शिल्प दिया है; साथ ही 'छन्दमुक्त' कविता की शैली का भी भरपूर प्रयोग किया है। इस काव्य-संग्रह के पाँच खण्ड हैंवन्दन-अर्चन, देश-परिवेश, आवाहन, प्रकृति-विभा तथा भावों की रुनझुन। 'वन्दन-अर्चन' खण्ड में मातृभूमि भारत की वन्दना, आदि कवि वाल्मीकि, जैन धर्म प्रवर्तक महावीर, महाप्राण निराला, सुभाषचन्द्र बोस, लाजपत राय, गुरुजी, जयप्रकाश नारायण आदि राष्ट्र-पुरुषों का पुण्य-स्मरण है। इस खण्ड में राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत राष्ट्र गौरव की कविताएँ हैं। इन कविताओं में कवि राष्ट्र की महानता के कारणों का भी उल्लेख करते चलते हैं।

कवि ने राष्ट्र का शत-शत वन्दन-अभिनन्दन करने के साथ-साथ इसके प्राचीन गौरव, ऐतिहासिक परम्परा, सांस्कृतिक वैशिष्ट्य, नदी-पर्वत-सागर, केसर की क्यारी, तीर्थ, वन-प्रान्तर, खेत-खलिहान का भी वर्णन किया है। आदि कवि का पुण्य स्मरण करते हुए कवि का गीत है'भारत के लिए तूने/मौलिक गाथा दी/ जन-जन की पीड़ा

* हरसिंगार खिलता है, डॉ. भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता

** डॉ. वरुण कुमार तिवारी, सेवानिवृत्त प्राध्यापक, कवि एवं समीक्षक, स्टेट बैंक कॉलोनी, वीरपुर सुपौल (बिहार)



को/ तुमने ही भाषा दी।' निराला के प्रति कविता में कवि गुरुमैता ने आत्मीय एवं अर्थवान भाषा के माध्यम से महाकवि को श्रद्धांजलि दी है'हे सूर्यकान्त! हे प्रभावान! हे युगावतार निराला/'मतवाला' के सम्पादक तुम सचमुच थे मतवाला/ हे हिन्दी के नीलकण्ठ! तू कालकूट को पीता/'मनोहरा, 'सरोज स्मृति' को बना गया तू गीता।'

द्वितीय खण्ड 'देश-परिवेश' में स्वदेश-प्रेम भारत के अतीत का वैभव-गान, शहीदों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन, भारत-विभाजन की पीड़ा की अभिव्यक्ति, देश की वर्तमान दैन्य दशा पर पश्चाताप के आँसू एवं मुम्बई में आतंकवादियों के खूनी-खेल का हृदय-विदारक चित्रण है। भारत विभाजन की पीड़ा से व्यथित कवि की वाणी है'खण्डित कर भारत-माता को/ ले आए जो दिन में रातें/ भारत के बुजुर्ग नेता की/ कहाँ खो गई बहकी बातें।' देश की वर्तमान स्थिति-आर्थिक विभीषिका, शोषण-उत्पीड़न, सामाजिक विसंगति/भ्रष्टाचार और बेकारी पर कवि की अश्रु-मिश्रित मार्मिक अभिव्यक्ति है'गरीबी-बेकारी बेगार/ भयावह भीषण भ्रष्टाचार/ नहीं है दीन जनों से प्यार/ लोग जी लेते हैं दिन-चार।' 'शहीद दिवस पर' शीर्षक कविता में कवि ने देश के लिए प्राणोत्सर्ग करनेवाले गुरु गोविन्द सिंह, झाँसी की रानी, कुँवर सिंह, तात्या टोपे, अश्फाक, चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरू, खुदीराम बोस आदि शहीदों को अपनी भाव-भरी श्रद्धांजलि दी है।

'कश्मीर की धरती' कविता में कवि कश्मीर की गौरव-गाथा को रेखांकित करते हैं। वे कश्मीर को कल्हण की कविता और जगनिक का आल्हा कहते हैं, साहित्य-कला-संस्कृति का संगम कहते हैं, शालीमार और निशात बाग और चित्ताकर्षक झीलों का दर्पण कहते हैं। शंकर अमरनाथ और वैष्णो देवी का तीर्थ स्थल कहते हैं। चीर का चमन और केशर का उपवन कहते हैं। लेकिन अफसोस! उसी भू-स्वर्ग पर आज दुश्मनों की नजर है, वहाँ बारूद सुलग रहा है; फलतः क्षुब्ध कवि कश्मीर की हालात पर अपनी मार्मिक वेदना भी प्रकट करता है।

भारत उत्सवों का देश है। दीप जलाने का उत्सव, रंग बिखेरने का उत्सव, ऋतुराज के स्वागत का उत्सव आदि अनेक उत्सव यहाँ लोक जीवन में रचे-बसे हैं। कवि गुरुमैता ने भी होली, वसन्त पंचमी एवं दीपावली आदि पर्वों-त्योहारों को रेखांकित करने के लिए लेखनी चलाई है।

अनुभूति की प्रामाणिकता श्रेष्ठ रचना की अनिवार्य शर्त है। कवि अपने परिवेश से गहरे जुड़े हुए हैं और लेखन में अपने अनुभवों को विस्तार देते हैं। कवि का गाँव समस्त आधुनिक साधनों एवं यातायात से वंचित और बाढ़-सुखाड़ की आपदाओं से त्रस्त कोसी क्षेत्र में स्थित है। वहाँ के जन-जीवन के खुरदुरे यथार्थ को कवि ने 'मेरा गाँव' शीर्षक कविता में चित्रित किया है'हर बरस सूखा हर बरस बाढ़, हर तरफ से रहता परेशान मेरा गाँव/ चौतरफा घेरता है बरसाती पानी/ अंडमान-निकोबार द्वीप मेरा गाँव /टूटता सड़क बाँध चूता है छप्पर/ थक कर चकनाचूर मजदूर मेरा

गाँव/ हड्डी-पसली निकली, पेट में आँखें धँसी/ खाता हो एक बार संतुष्ट मेरा गाँव/ कास खड़ खड्डी-सोन और पुआल/ पटिया-गोनैर-बाँस ढोता मेरा गाँव।'

'गाँव के किसान' कविता में बरसात के मौसम में चूते छप्पर के नीचे चिथड़े तानकर बाल-बच्चों के साथ भूखे सो जाने जाने वाले कोसी क्षेत्र के किसानों की बदहाली का कवि ने मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। इसे पढ़कर पाठक-हृदय द्रवित हुए बिना नहीं रह सकता। कवि ने मुसहर टोली के दलित-शोषित-उपेक्षित जनों की विवशता को 'मुसहर' कविता में उद्घाटित किया है। 'कोसी-बैरेज' पर भी एक कविता है। कोसी बैरेज के कारण इस क्षेत्र में खुशहाली आ गई। हर साल की बाढ़ की बर्बादी से लोगों को त्राण मिला और धान-गेहूँ, मूँग-मटर और सरसों की खेती होने लगी। लेकिन ये सब बातें 18 अगस्त के जल प्रलय से पहले की हैं। गत वर्ष कोसी-बाँध के टूटने से इस क्षेत्र के सहरसा, सुपौल, मधेपुरा, अररिया, पूर्णिया आदि जिलों में कोसी का कहर इस तरह बरपा कि लाखों लोग बाढ़ की चपेट में आ गए और घर-दुआर, खेत-खलिहान, माल-मवेशी सब नेस्तनाबूद हो गए।

तृतीय खण्ड 'आवाहन' का विषय हैदीप-पर्व, मातृभूमि, कवि-व्यक्तित्व, कविता की परिभाषा, जीवन की परिभाषा, अपोलो तेरह आदि। 'दीप जला दो' कविता में कवि अन्तर्मन को प्रकाशित करने की बात करते हैं'आओ, हे! ज्योतिर्मय आओ/ अन्तरतम के दीप जला दो!!'

कवि कर्म करने वाले मनीषियों के बारे में कवि गुरुमैता का कहना है कि कवि केवल कल्पना लोक में विचरने वाला नहीं होता, अपितु वह सुर-सरिता-सा मंगलमय, पुरुषार्थ-प्रेरक व कर्त्तव्य-चालक होता है। कवि गुरुमैता कविता को परिभाषित करते हुए इसे प्रकृति की अनुकृति, भावों की झंकृति, संस्कृति की मुखाकृति और विकृति की अस्वीकृति कहते हैं। वस्तुतः उन्होंने कविता को जिस रूप में परिभाषित किया है; कोई काव्य-सिद्धान्त विशेषज्ञ ही कर सकता है। कवि ने कई क्षणिकाएँ भी लिखी हैं जो उनके प्रकृति-प्रेमी-व्यक्तित्व को उजागर करती हैं।

चतुर्थ खण्ड 'प्रकृति-विभा' में प्रकृति से सान्निध्य एवं आत्मीय अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। कवि को छायावादी और प्रयोगवादीदोनों काव्य-शैलियों के प्रयोग में अपूर्व सफलता मिली है। कल्पना की समृद्धि और कला-पक्ष की उत्कृष्टता के कारण इस खण्ड की रचनाएँ प्रकृत प्रसाद गुण-सम्पन्न बन पड़ी हैं। 'उषा-गान' कविता में उषा के मानवीकरण द्वारा उसके सौन्दर्य को उजागर किया गया है। 'विंध्याटवी' कविता में वासन्ती विभा से मण्डित विंध्याटवी के चित्र अंकित किए गए हैं। 'चीड़ का जंगल' शीर्षक कविता में मौलिक बिम्बों, प्रतीकों और उपमानों को प्रस्तुत किया गया है। 'पेड़ बाबा' में पेड़ की संवेदनाओं को उद्घाटित किया गया है। 'यह पूनम की रात है' में प्रकृति का प्रभावशाली चित्रण हुआ है'धरती से अम्बर तक फैली/ चंदा की बारात है/ ताल-तलैयों में लहराता/ पूनम का मधुगात है।'

पंचम खण्ड 'भावों की रुनझुन' कवि गुरुमैता के हृदयतन्त्री के तारों से झंकृत गीतों का संग्रह है। इन गीतों में उनकी आशा-आकांक्षाओं और रागात्मक संवेदनाओं



की लयात्मक अभिव्यक्ति हुई है। कवि गुरुमैता के प्रेमी हृदय की गहराई और विस्तार दोनों अपने विविध रूपों में यहाँ प्रकट होते हैं। सुप्रसिद्ध गीतकार डॉ. कुँवर बेचैन ने पुस्तक की भूमिका में इन गीतों के बारे में लिखा है'डॉ. गुरुमैता के कवि का यदि वास्तविक और उच्च रूप देखना हो तो उनके वे गीत देखें जिनमें प्रेम और प्रेयसी-पीर की अभिव्यक्ति हुई है।' प्रख्यात नवगीतकार राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने भी उदार मन से इन गीतों की प्रशंसा की है।

निष्कर्ष यह कि इन रचनाओं में मानव-हृदय का उल्लास एवं पीड़ा दोनों स्पन्दित हैं। कवि मूलतः राष्ट्रीय धारा के चिन्तक हैं।

---

# प्राप्ति-स्वीकार

पिछले अंकों में सूचीबद्ध पुस्तकों/पत्रिकाओं के अतिरिक्त प्राप्त नई पुस्तकें/पत्रिकाएँः

## पुस्तकें

**भारतः** हजारों वर्षों की पराधीनता : एक औपनिवेशिक भ्रमजाल; प्रो. रामेश्वर प्रसाद मिश्र एवं प्रो. कुसुमलताकेडिया; प्रकाशकः मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, रवीन्द्रनाथ टैगोर मार्ग, बानगंगा, भोपाल (म.प्र.) 462003; संस्करणः द्वितीय (आवत्ति) 2011; पृः 260; मूल्यः 140 रुपये।

**प्रारंभिक शिक्षा** एक सार्वजनिक रिपोर्ट; प्रोब दल, सेटर फॉर डेवलपमेंट इकॉनामिक्स के सहयोग से; OXFORD University Press, YMCA Library Building, Jai Singh Road, New Delhi-110001, पृः 158; मूल्यः 175 रुपये।

## पत्रिकाएँ

**अनसूया** रजत जयंति विशेषांक, वर्ष : 26, सयुक्तांक : दिसम्बर-जनवरी, 2010-2011 हर माह नौ या दस तारीख को प्रकाशित; संपादकः ज्योत्स्ना मिलन; स्वामी मुद्रक एवं प्रकाशकः अनसूया ट्रस्ट की ओर से ज्योत्स्ना मिलन; एम-4, निराला नगर, भदभदा रोड, भोपाल (म. प्र.) 462003; पठः 148; मूल्यः 75 रुपये।

**हिंदी विवेक** मासिक पत्रिका वर्षः 1, अंकः 1; मार्च, 2011; संपादकः दिलीप करंबेलकर; प्रकाशक एवं संपादकः दिलीप करंबेलकर द्वारा हिन्दुस्तान प्रकाशन संस्था हेतु विवेक मुद्रणालय, 5/12, कामत इंडस्ट्रीयल इस्टेट, 396 स्वा. वीर सावरकर मार्ग, प्रभादेवी, मुंबई-400025; पठः 70; मूल्यः 20 रुपये।

**सशक्त भारत,** सूर्या फाडण्डेशन पत्रिका, अप्रैल, 2011 वर्षः 8, अंक : 12; संपादकः विनीत गर्ग; प्रकाशक एवं मुद्रकः ब्रिगेडियर डी.सी. पंत (सेवानिवत्त), स्वामी का नामः सूर्या फाउण्डेशन, मुद्रणलयः एक्सपो प्रिंट एण्ड मीडिया, ज्वाला हेडी, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063 प्रकाशक का स्थानः बी-3/330, पश्चिम विहार, नई दिल्ली- 110 063; पठः 8; मूल्यः 25 रुपये वार्षिक।

# त्रासद घटनाओं के विरुद्ध संगठित होकर संघर्ष का बिगुल फूँकती कविताएँ*

**घनश्याम मैथिल****

'बोनसाई' युवा कवि गोविन्द पाल का 'परमात्मा के खिलाफ' कविता संग्रह प्रकाशित होने के पश्चात सद्य प्रकाशित दूसरा काव्य संग्रह है। जैसा कि कविता संग्रह के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि आज का आदमी दिन पे दिन कैसे सिकुड़ता जा रहा है। अपने 'स्व' के दायरे को भी लघु से लघुत्तम में तब्दील करते हुए वह अपनी विराटता या 'सर्व' का अर्थ खोते हुए दिनों दिन कैसे बौना होता जा रहा है और कवि की भी यही चिन्ता है किखुली प्रकृति में बाँहें फैलाकर आकाश को चूमने की कामना रखने वाला और अपनी जड़ों से पाताल की गहराइयों से सम्बन्ध रखनेवाला मनुष्य ड्राइंग-रूम के एक गमले में सिकुड़ कर रह गया है। जहाँ उसके पास न पक्षियों की चहचहाट है, न उनके नीड़ के निर्माण हेतु शाखाएँ हैं, न उसके पास किसी को देने के लिए सुगन्धित स्वादिष्ट फल-फूल हैं, न दो घड़ी किसी को विश्राम देने हेतु शीतल छाँव, वह तो मात्र बोनसाई बनकर रह गया है। यानी मात्र दिखावे का 'शो पीस' और कुछ नहीं। संग्रह की इन कविताओं में आम आदमी की पीड़ा, संवेदना से कवि का गहरा सरोकार है। ये कविताएँ केवल विसंगतियों, विद्रूपताओं को तर्जनी ही नहीं दिखातीं बल्कि उनके विरुद्ध संगठित होकर संघर्ष का बिगुल भी फूँकती हैं।

संग्रह की पहली कविता को पढ़ते ही कवि के तेवर से पाठकों का परिचय हो जाता है। 'अब तक किसी ने नहीं सुनी' कविता में कवि कहता है'मैं उन अभिव्यक्ति के/ इर्द-गिर्द रहना चाहता हूँ/ जहाँ महसूस किया जा सके/ किसी के भूख की तड़प को/ जिससे छीना गया है रोटी का हक/ मैं उसके साथ रहना चाहता हूँ/ सर छिपाने को जिसके पास छत तक नहीं है।' 'लोकतन्त्र के इस जंगल में'

* कृति : बोनसाई (काव्य-संग्रह), रचनाकार : गोविन्द पाल, प्रकाशक : देशभारती प्रकाशन, डी-581 गली. नं.3, शाहदरा, नई दिल्ली; मूल्य : 150 रुपये, पृ. 112।

** घनश्याम मैथिल 'अमृत' जी/एल-434, अयोध्या नगर, भोपाल-41, मो. 9893803743



कविता में कवि हमारी समझौतापरस्त जिन्दगी और मुर्दादिली को जिन्दादिली में बदलने के लिए लिखता है'समय का तकाजा/ यही कहता है/ जिन्दों को आना होगा एक छत के नीचे/ और शब्दों में भरना होगा उजाला/ ताकि अँधेरे में भटकी हुई इन भेड़ों को आदमी बनाया जा सके।' 'कविता का पड़ाव' रचना पाठक के हृदय में नश्तर-सी उतर जाती है। कवि दिन-रात रचे जा रहे साहित्य के औचित्य पर ही प्रश्नचिह्न लगाने को विवश है। वह लिखता है'संवेदनाओं के समुद्र में/ गोता लगाते हुए / शब्दों के लबादे ओढ़े/ किसके लिए परोसी जा रही है कविता? जिनके लिए है कविता/ वे नहीं जानते कविता का अर्थ/ उन्हें कोई सरोकार नहीं/ इन भावनात्मक हुजूमों से/ वे जानते हैं सिर्फ पेट का अर्थ।' 'एक कविता गढ़ता हूँ' कविता के माध्यम से कवि लिखता है कि आज का आदमी धन कमाने की अन्धी लिप्सा में इतना गिर गया है कि वह मिलावट जैसे घृणित धन्धे में आकण्ठ लिप्त है। कवि लिखता है'स्वार्थ की जहरीली सोच को/ तड़क भड़क डिब्बा बन्द पैकेट में/ खूबसूरत अन्दाज में परोसता देख/ मेरी भावनाएँ तार-तार होने लगती हैं/ अंदर आग जलने लगती है/ जब उस डिब्बे बन्द जहर को/ अमृत बता कर पेश कर दिया जाता है।' 'ओट में छिप गया चन्द्रमा' कविता के माध्यम से कवि संघर्ष का नाद करते हुए लिखता है'हे कवि! तुम जलाओ मशाल/ पैदा करो अग्नि शिखा/ और इस मध्य रात्रि के/ स्नायु तन्त्र के गर्भ में/ जनम दो कुछ भ्रूण/ जो कल की रोशनी की लड़ाई लड़ सकें।' 'मिठाई से नमकीन हो जाता हूँ' कविता के माध्यम से कवि मुखौटा लगाए समाज के दोहरेपन के चरित्र को उजागर करता है। 'सत्यमेव जयते' कविता के द्वारा कवि आज की अन्धी कानून व्यवस्था और दूषित होती जा रही घृणित राजनीति पर तीखा प्रहार करता है। 'एक घटना घटती है' संग्रह की बहुत महत्त्वपूर्ण कविता है, जिसमें कवि समाज के हर जिम्मेवार आदमी की भूमिका को सन्दिग्ध बताते हुए कि कैसे एक राजनेता 'राजनीति', पत्रकार 'खबर', लेखक-कवि 'कहानी-कविताओं' का प्लाट ढूँढ़ते हैं और पीड़ित व उसकी पीड़ा से किसी को कोई लेना देना नहीं होता है।' 'रूपरेखा' व 'ब्लू प्रिंट' दो छोटी-छोटी किन्तु मर्मस्पर्शी कविताएँ हैं, जो स्त्रियों की वर्तमान दुर्दशा के लिए हजारों वर्ष पूर्व स्त्रियों के साथ घटित अन्याय को जोड़कर देखती हैं। 'मुझे अब गुस्सा नहीं आता' कविता के माध्यम से कवि ने अपनी पीड़ा के विस्तार से अभिव्यक्ति दी है। समाज में आज जहाँ कहीं भी अनैतिक, असंगत, अत्याचार, अनाचार हो रहा है उसके लिए उसे आम आदमी पर गुस्सा आता है, जो कायरों की तरह मूकदर्शक होकर इन घटनाओं को अंजाम देने वाले लोगों के विरुद्ध खड़े नहीं होते। 'पापी पेट' कविता की ये पंक्तियाँ कितनी मर्मभेदी हैं'देह को जिन्दा रखने के लिए/ देह परोस रही है/ पेट के लिए/ पेट के नीचे उतर रही है।' इसके अलावा 'बोनसाई', एक कविता का जन्म, सूरज कायर नहीं है, पर्वत पहाड़ टीले, महिला आरक्षण, मौत के सौदागर, सारे जहाँ से अच्छा, मैं शर्मिन्दा हो गया, कविताएँ भी पाठकों को अन्दर तक झकझोर देती हैं। कवि गोविन्द पाल की ये

कविताएँ समकालीन समय की त्रासद घटनाओं का वर्णन भर नहीं हैं बल्कि इन घटनाओं के विरुद्ध संगठित होकर हमारे संवेदनहीन होते जा रहे सुप्त समाज को निर्णायक भूमिका के लिए तैयार होने का हौसला भी प्रदान करती हैं। ये कविताएँ परिस्थितियों से मुँह मोड़कर भागने वालों को ललकारती ही नहीं हैं, बल्कि इनके खिलाफ खड़े होने का आह्वान भी करती हैं। कविताओं की भाषा-शैली सहज, सरल व पठनीय है। पुस्तक का मुद्रण साफ सुथरा है, कहीं-कहीं प्रूफ सम्बन्धी अशुद्धियाँ खटकती हैं। घटायेप अँधेरे में निराशा के बीच निश्चित ही आशा का नया सूरज लिए ये कविताएँ आम पाठकों, लेखकों, बुद्धिजीवियों व आलोचकों को गहरे तक प्रभावित करेंगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

## पाठकीय प्रतिक्रिया

जनवरी-मार्च अंक में आचार्य रघुवीर का खोजपूर्ण लेख पढ़कर सुखद आश्चर्य हुआ कि अतीत में हमारी संस्कति का विस्तार दूर-दूर तक हुआ था। खेद है कि स्वतंत्र भारत की सरकारों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त और श्री धर्मदेव तिवारी के लेख ग़िाय उनकी गहरी पैठ के सूचक हैं। डॉ. रमानाथ त्रिपाठी का लेख सीता की अग्नि-परीक्षा के सत्य रूप का उद्घाटन करता है।

**- चन्द्रकान्तवर्मा, रामजस कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110 007**

गंभीर और विचारोत्तेजक आपकी पत्रिका 'चिन्तन-सजन' मुझे नियमित मिल रही है। इसके लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद।

**- डॉ. अदिति सैकिया, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मनोहारी देवी कनई महिला महाविद्यालय, डिब्रुगढ़ (असम)**

चिन्तन-सजन का अंक अक्टूबर-दिसम्बर, 2010 मुझे मार्च, 2011 में मिला, विलम्ब से। क्या कारण हो सकता है? बिना जाने, मैं जान भी कैसे सकता था। मैंने मान लिया कि आपने मुझे भुला दिया है। सच, यदि आप मुझे यह अंक न भेजते तो कितना मूल्यवान पढ़ने से मैं वंचित रह जाता और उस माटी की खुशबू से भी अतंतः जिससे सनातन आत्मा तप्त होती है।

**- केशीकांत, क्यू-25, पंजाबी विश्वविद्यालय परिसर, पटियाला-147002**



*We Strive*
*to Satisfy*
*Our Customers*

VASUNDHARA MARKETING CO.

Sales Tax No. LC/13/017261/1080

☎ 3277883 (Off.)

*Regd. Office*
**1/3575, Netaji Subhash Marg**
**Darya Ganj, New Delhi-110002**

With Best Compliments

from

VASUNDHARA IMPEX (P) LTD.

*Administrative Office*
LG-69, World Trade Centre,
Babar Lane, New Delhi-110001

*Regd. Office*
**1/3575, Netaji Subhash Marg,**
**Darya Ganj, New Delhi-110002**
**Phone Off. 3277883, 3711848**